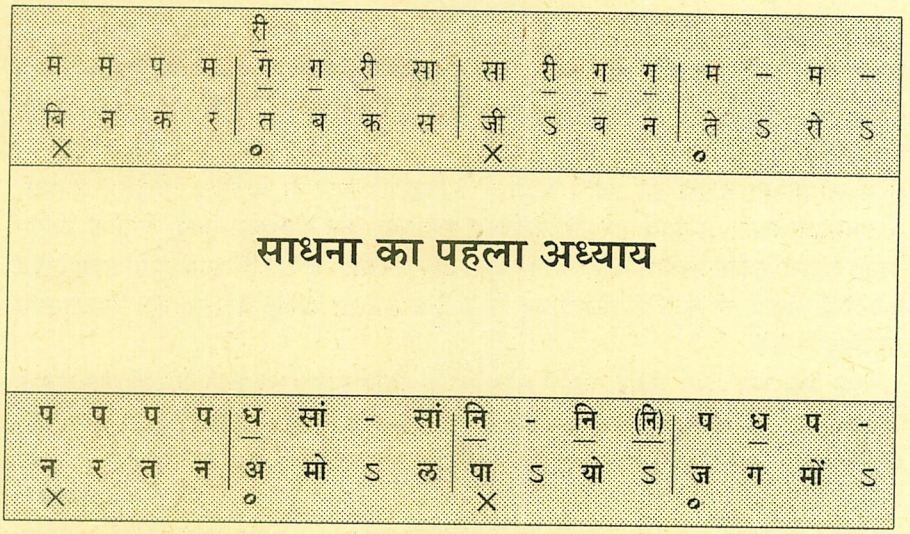


भारतीय संगीत के क्षेत्र में 'पद्मभूषण' स्व. डॉ. श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकरजी का व्यक्तित्व स्वनामधन्य है। हिंदुस्थानी संगीत के युगनिर्माता उद्‌भावक आचार्य पं. विष्णु नारायण भातखंडे के अंतरंग शिष्य एवं एकनिष्ठ अनुयायी, संगीत के महान मनीषी एवं गायकों के गायक, श्रेष्ठ वाग्गेयकार एवं अन्यतम विद्यागुरु के रूप में आप निर्विवाद रूप से सर्वमान्य हो गए हैं। आपका योगदान भारतीय संगीत के विकास में अभूतपूर्व सिद्ध हुआ है। वस्तुत: संगीत की नायकी एवं गायकी के अंतर्गत इस शती के पूर्वार्द्ध में जो बिखराव और संकुचितता पैदा हो गई थी उसमें व्यवस्थापन की नींव डालते हुए उस क्षेत्र में अध्ययन-निष्ठा, अनुसंधान एवं नवनिर्माण को प्रस्थापित करने का महान कार्य पं. भातखंडेजी के अनुसरण पर संपूर्ण ईमानदारी तथा समर्पण भाव से करनेवाले महानुभाव के नाते डॉ. रातंजनकरजी का स्थान अपने आप रेखांकित हो जाता है। उनके जीवन को चरित्रकी निकटता और गहराई से (संगीत के दृष्टिकोण से) जानना इस दृष्टि से भी आवश्यक है कि उसके कारण हिंदुस्तानी संगीत की विकासयात्रा के कतिपय पदचिह्नों की पहचान हमें प्रगाढ़ रूप से प्राप्त हो सकेगी और उससे संगीत प्रस्तुति तथा संगीतशास्त्रविषयक हमारी विभिन्न धारणाओं को नया उजाला प्राप्त हो सकेगा। इसीके साथ आनुषंगिक तौर पर एक लाभ यह भी होगा कि पं. रातंजनकरजी के विषय में महाराष्ट्र में तथा महाराष्ट्र के बाहर जो कुछ अनावश्यक विपरीत भावनाएं संगीत की दुनिया में प्रसृत हुई थीं और कहीं कहीं आज भी प्रसृत हैं, उनका भी कुछ मात्रा में निराकरण हो सकेगा और उस महान आत्मा की सौ प्रतिशत प्रामाणिक संगीत-सेवा को यथोचित न्याय मिल सकेगा।

वास्तव में डॉ. रातंजनकरजी के शिष्यों का यह कर्तव्य ही है जिसकी पूर्ति से गुरु के ऋण से भरसक मुक्त होने की दिशा में कुछ कर सकने का संतोष उन्हें मिल सकेगा। सच तो यह है कि हमारे गुरुवर ने हमें इतना कुछ दिया है कि उसके एक शतांश से भी ऋणमुक्त होना असंभव है।

इस जीवनी को मैं, के.जी. गिंडे, पं. रातंजनकरजी का, हमारे पूज्यपाद अण्णासाहब का

अंतरंग शिष्य, कथन करने जा रहा हूं। मेरा व्यक्तिगत संयोग यह रहा कि अण्णासाहब की निकट सन्निधि में अड़तीस वर्ष तक रहने का सौभाग्य मुझे हासिल हुआ। मेरी संगीत-शिक्षा का श्रीगणेश उन्हींके घर पर हुआ, और मैं उनके परिवार का एक सदस्य ही बन गया। तत्पश्चात् मैरिस कॉलेज, लखनऊ में १६ साल तक बिलकुल उनके निकट रहकर उनके दिव्य विद्यादान से मैं लाभान्वित हुआ। इस प्रदीर्घ सान्निध्य के कारण गुरुवर के व्यक्तित्व, विद्वत्ता, तपस्या, कलामर्मज्ञता आदि अन्यान्य पहलुओं के विषय में मैं बहुत कुछ देख-जान सका, जिसका उपयोग प्रस्तुत जीवनी के लिए भलीभांति हो सका। दूसरी अनुकूल बात यह रही कि स्वयं हमारे अण्णासाहब ने अपनी जीवनी की कुछ टिप्पणियां बना के रखी थीं। इससे जीवनी के लिए एक ठोस आधार भी मिल सका।*

एक और बात। यह जीवन कहानी बातचीत के दौरान साकार होती गई है। मैंने यह कहानी मेरे प्रिय स्नेही तथा संगीत-समीक्षक डॉ. श्रीरंग संगोराम (पुणे) को निवेदित कर दी। उन्होंने बीच बीच में कुछ प्रश्न भी उपस्थित किए, जो जीवनी को सही दिशा देने की दृष्टि से काफी उपयुक्त रहे। हमारी बातचीत का यह सिलसिला अनेक दिनों तक चलता रहा, जिसे उसी समय ध्वनीफिते पर उतारा गया और तदुपरांत डॉ. संगोरामजी ने इस पूरी निवेदन-मालिका का शब्दांकन, व्यवस्थापन और संपादन करके इसे एक बंदिश का रूप दे दिया इस बारे में एक अंतिम बात यह कि इस कथन-प्रवाह में मैंने जो कुछ भी कहा है, वह सब मेरी प्रत्यक्ष अनुभूति और जहां आवश्यक लगा वहां आप्तवाक्य के आधारपर कथन किया है। कल्पना की उड़ान के लिए यहाँ कोई गुंजाइश नहीं रखी गई है।

## परिस्थितियाँ

गुरुवर अण्णासाहब के पूर्व की परिस्थितियों को जानने के लिए हमें आज से लगभग सवासौ वर्ष पीछे जाना होगा। वह काल १८५७ के स्वातंत्र्ययुद्ध का था। रानी व्हिक्टोरिया के घोषणापत्र के तहत ब्रिटिश साम्राज्य की प्रतिष्ठापना हो चुकी थी और स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रयत्नों को विशेष प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। हम जानते हैं कि उस कालखंड के राजनैतिक माहौल पर सर्वश्री लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक तथा बिपिनचंद्र पाल (लाल-बाल-पाल) का बड़ा ही प्रभाव रहा। उन्हींके कारण देश में स्वतंत्रता की ज्योत और तेज हो उठी। इन महान विभूतियोंने तथा महात्माजी आदि नेताओं ने जो चेतना जगाई उसके फलस्वरूप १९४७ में भारत को स्वाधीनता प्राप्त हो सकी। खैर, वह सारा इतिहास तो सर्वविदित है।

इधर सांस्कृतिक क्षेत्र की हालत देखी जाए तो हमारे इस देश में शिल्प, चित्र, संगीत इत्यादि ललित कलाओं की स्थिति अंधकारमय हो गई थी। क्योंकि ब्रिटिश राज में इन कलाओं के उत्थान और विकास के लिए अनुकूल वातावरण मिलना असंभव ही था। संगीत के क्षेत्र में, उस जमानें में, जितने भी महान कलाकार थे वे अपने आश्रयदाताओं को रिझाने के लिए कहिए उन्हींके आश्रय में रहते हुए अपनी अपनी कला की श्रीवृद्धि के लिए अपनी अपनी साधना में दत्तचित्त रहे। किंतु ये सारे प्रयास एक प्रकार से आत्मकेंद्रित थे। निःसंदेह इन कलाकारों

.....

* *डॉ. रातंजनकर की यह लघु आत्मकथा परिशिष्ट में समाविष्ट है।*

में कुछ तपस्वी कलाकार थे, जिन्होंने अथक परिश्रम द्वारा गायन-वादन की इस कठिन कला को हस्तगत किया था; परंतु वे अपनी विद्या किसी दूसर को प्रदान करने के विषय में अत्यंत अनुदार थे। फलत: इस विद्या को आत्मसात् करने की गहरी लगन रखनेवाले साधकों को चोरी-छिपे या और और उपायों से इस विद्या को हस्तगत करने के सिवा और कोई चारा नहीं था। ऐसी गतिरोधात्मक परिस्थितियों के कारण संगीत की प्रगति और विकास होना कैसे संभव था? यही नहीं बल्कि आज हम यह महसूस कर रहे हैं कि इन सारी स्थितियों के कारण उस जमाने में संगीत के संदर्भ में हमें बहुत कुछ खोना पड़ा था, जिसकी परिपूर्ति होना भी असंभव था।

किंतु अंधकार के बाद प्रकाश का क्रम आता ही है। आप जानते ही हैं कि इसी कालखंड में हिंदुस्तानी संगीतक्षेत्र के क्षितिज पर दो महान विभूतियों का उदय हुआ। मैं तो यही कहूंगा कि उन्होंने संगीतधर्म की ग्लानि को मिटाने के लिए 'अवतार' ही ग्रहण किया। दोनों 'विष्णु' ही थे। **पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर और पं. विष्णु नारायण भातखंडे** : दोनों का आविर्भावकाल लगभग एक ही था, १८५७ के स्वातंत्र्यसमर के बाद का। उस काल समाज में संगीतादि ललित कलाओं को घृणास्पद दृष्टि से देखा जाता था। क्योंकि इन कलाओं का संगोपन विलासी धनिकों के द्वारा ही हो रहा था। फलत: जो भी संभ्रांत परिवार का व्यक्ति इन ललितकलाओं की साधना में लग जाता था वह समाज से मानो उठ जाता था। ऐसी दशा में समाज के द्वारा संगीत-कला को प्रतिष्ठा प्रदान करने की दिशा में जो भी प्रयत्न हुए उनका अधिकांश श्रेय, मैं कहूंगा, पं. विष्णु दिगंबरजी को ही है। आप ही के प्रयत्नों से आज हम देख पाते हैं कि अच्छे अच्छे घरों में संगीत-साधना हो रही है।

'चतुर पंडित' भातखंडेजी के प्रयत्न दूसरी दिशा में किंतु विष्णु दिगंबरजी के कार्य की आपूर्ति के रूप में होते रहे। संगीत के प्रति बचपन से ही उनमें लगाव था और तभी से संगीत सुनने का चाव उन्हें लगा था। किंतु उनका सुनना आम श्रोताओं की तरह नहीं था। उन्हें महसूस होता था कि अलग अलग कलाकार गाते हैं किंतु उन सबके गायन में कहीं भीतरी एकरूपता है। एक कलाकार ने एक राग गाया और दूसरे किसीने वही राग गाया तो उसमें साम्य रहना स्वाभाविक ही था। किंतु उन्हें यह जानने की लगन थी कि इस समानता का रहस्य क्या है? भातखंडेजी ने कलाकारों से पूछा कि यह राग अभी आपने जो गाया, उसे हमें समझाकर बताइए। तो उस्ताद लोग कहते थे कि यह हमारे बस की बात नहीं; तुम खुद सुनो और जान लो। फिर पंडित भातखंडेजी ने ही सोचना आरंभ किया। उन्होंने अनुमान लगाया कि जब ये एक-सा गाते हैं, तो उनमें कुछ न कुछ नियम अवश्य होंगे। इसके पीछे कुछ शास्त्र का आधार जरूर होना चाहिए। फिर आगे चलकर इस दिशा में पंडितजी ने विपुल और अति विस्तृत कार्य किया। इस अनमोल कार्य के संबंध में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अत: उसकी पुनरावृत्ति यहां करने की आवश्यकता नहीं।

पं. भातखंडेजी का कार्य बढ़ता गया और सौभाग्य से उनका परिचय रियासत बड़ौदा के समानधर्म महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ से हुआ। महाराजा की सिफारिश से उन्हें बड़ौदा के तथा अन्य रियासतों के ग्रंथालयों से लाभ उठाने की इजाजत मिली। पंडितजीने वहां से प्राचीन ग्रंथ प्राप्त करके अपने समय में प्रचलित संगीत को एक ठोस शास्त्राधार प्रदान करने की दिशा में अपने भगीरथ प्रयत्न आरंभ किए। मैंने अभी जैसे कहा कि ये दो 'विष्णु' एक दूसरे के लिए परिपूरक संगीतनेता थे। एक विष्णु ने संगीत को सभ्य समाज में प्रतिष्ठित स्थान

दिलाने के प्रयास को सफल कर दिखाया जब कि संगीत की साधना विधिवत् हो सके, इसके लिए उसे सुविहित शास्त्राधार ग्रंथों के माध्यम से मिल सके, इस हेतु अपना समूचा जीवन लगाकर उसमें सफलता प्राप्त की। लखनऊ के **मैरिस म्यूजिक कॉलेज** की स्थापना आपके कार्य का एक और बुलंद पहलू था और हमारे गुरुवर अण्णासाहब रातंजनकर के कार्यकर्तृत्व के जौहर वहीं पर प्रकट हुए।

**गुरुशिष्य-संबंध**

इसमें शक नहीं कि उस जमाने में साधकों को बहुत कष्ट उठाकर विद्या प्राप्त करनी पड़ती थी। अथवा गुरुसेवा के सिलसिले में यदि गुरु का मन चला तो विद्या के कुछ कण हासिल हो सकते थे। जब शिष्य गुरु के पास पहुंचता तब उसकी परीक्षा ली जाती थी। मैंने ऐसा सुना है कि उस जमानें में चार प्रकार के शिष्य रहा करते थे। एक था खानदानी गवैयों का रिवाज। एक पक्ष ऐसा था जो उस्ताद के शागिर्द कहलाते थे। याने आज उस उस्ताद के भक्त हैं तो श्रोता के नाते आकर बैठ जाया कीजिए। इसमें उस साधक की परीक्षा हो जाती थी, कि तुम्हारी लगन कहांतक है? इससे एक लाभ यह होता था कि जो कुशाग्र बुद्धि वाला व्यक्ति होगा वह सुन सुन के बहुत-सा उठा भी लेता था। उसको तालीम तो मिलती नहीं थी, सुन सुनकर अपने तईं अनुकरण करने का उसका रवैया रहता था। यह रहा आम शागिर्द। दूसरा है खास शागिर्द। ऐसा शागिर्द उस्ताद के घर से चिपक जाता था। फिर उससे घर के और काम करवाए जाते। सेवा करनी पड़ती थी। और हम तो जानते ही हैं कि पुराने आश्रमों में यही प्रथा थी। कष्ट भी करना और स्वावलंबी हो जाना ऐसी दोहरी शिक्षा उसमें थी। इन शागिर्दों को उस्तादों के प्रमुख शिष्योंद्वारा तालीम दिलवाई जाती। यदि आप उस कसौटी को भी पार कर गए तो आपको खास-उल-खास तालीम मिलना आरंभ हो जाता। यहां गुरु स्वयं तालीम देने बैठ जाते थे। लेकिन वहां भी अपनी कला की समूची बारीकियां नहीं बताते थे। उसके भी आगे चौथी जो श्रेणी थी उसमें गुरु के बेटे या किसी रिश्तेदार को शामिल कर लिया जाता था। यदि कोई खास साधक इस प्रकार की निकटता लिए हुए होता तो उसे उस्ताद या गुरु का गंडाबंध शागिर्द बनने की सुविधा रहती थी। इसके बाद आज के जमाने में एक और प्रणाली चल पड़ी है, 'ट्यूशन' की जिसे हम सब जानते हैं।

अण्णासाहब रातंजनकर तो गंडाबंध शिष्य ही थे, उस्ताद फैयाजहुसेनखांसाहब के। शिष्य के नाते वही स्थान उनका पं. भातखंडेजी के संदर्भ में भी था। ये सब बातें हमें विस्तार से आगे देखनी ही हैं। यहां बात उठी है गंडाबंधन की तो अण्णासाहब से संबंधित एक बात का जिक्र यहीं कर लिया जाए, जिसे हमने स्वयं उन्हींसे सुना है। फैयाजखां साहब ने अण्णासाहब से कहा– "देखो, तुम पंडित भातखंडे के पास से आए हो। मगर मैं पहले गंडा बांधूंगा, फिर तुम्हें सिखाऊंगा। हम लोग गंडाबंध शागिर्द को अपना बेटा ही समझते हैं।" इसलिए गंडाबंधन-संस्कार में शिष्य को गुरु गोदमें बिठलाकर उसे चने खिलाता है। गंडाबंधन-संस्कार के बाद खांसाहब ने हमारे गुरुवर को बताया था कि अब तुम हमारे बेटे हो गए हो तो हमारे घराने के किसी भी बुजुर्ग के पास जाकर तुम पूछ सकते हो।

मैं इसके बारेमें अपना एक अनुभव बताता हूं। यदि मुझे किसी समस्या के बारेमें जानना हो तो आज मैं खादिम हुसेन खांसाहब, जो आग्रा घराने के बुजुर्ग उस्ताद हैं, उनके पास सीधे

पहुंच सकता हूं। वे मुझसे कुछ छिपा नहीं सकते क्योंकि अण्णासाहब उनके 'घर' के गंडाबंध शागिर्द हैं। पं. भास्करबुवा बखले, नत्थनखांसाहब के ऐसे ही शिष्य थे। उनकी गैरहाजिरी में गुरुमाता ने उन्हें कई बंदिशें दी थीं। ... इन सारी परिस्थितियों का संबंध अण्णासाहब के व्यक्तित्व-गठन के साथ जुड़ा हुआ है।

**घर-परिवार**

अण्णासाहब का मूल गांव **रातंजन** जो महाराष्ट्र राज्य में सोलापुर जिले के अंदर 'बार्शी' तहसील में आता है। इसे 'रातंजन जवळगांव' कहते हैं। इसलिए इस परिवार का नाम शुरू में 'जवळगांवकर-कुलकर्णी' था। बाद में यह परिवार बंबई आ गया तब अण्णासाहब के पिता श्री नारायण गोविंदजीने इस लंबे नाम में संशोधन करके परिवार का नाम 'रातंजनकर' कर लिया। श्री. नारायण गोविंद रातंजनकरजी संगीत के बड़े शौकीन थे। यहीं नहीं तो वे संस्कृत भाषा के विद्वान और अंगेजी साहित्य के परमप्रेमी थे। बंबई में सरकारी सी.आय.डी. अनुभाग में अच्छे पद पर उनकी नियुक्ति हुई थी। नौकरी के समानांतर उन्होंने अपना संगीत का शौक और संस्कृत का अध्ययन भी जारी रखा था। संयोगवश 'सतारीचे पहिले पुस्तक' (सितार की शिक्षा भाग-१) उनके हाथ गई। उसके आधार पर उहोंने सितार बजाना शुरू किया था। संगीत के प्रति उनकी अभिरुचि बढ़ती गई और श्रेष्ठ गायन की पहचान भी। कॉलेज की शिक्षा के दौरान उनका पाणिनी की अष्टाध्यायी, रसकौमुदी इत्यादि ग्रंथों का अध्ययन भी चलता था। सी. आय.डी. विभाग में होने के कारण श्री नारायणराव का वकीलों के साथ संपर्क हुआ करता था। और उस काल वकीलों में बालगंधर्व इत्यादि के प्रभाव के कारण नाट्यसंगीत तथा और संगीत के प्रति काफी आकर्षण पैदा हुआ था। नारायणराव के संगीतानुराग के लिए यह बात बड़ी अनुकूल रही।

वकीलों के साथ उठना-बैठना होने पर भी शुरू में तो नारायणराव का पं. भातखंडे से प्रत्यक्ष परिचय नहीं था। नाम जरूर सुना था। दोनों एक ही कॉलेज 'एल्फिन्स्टन'के छात्र थे। भातखंडेजी दो वर्ष 'सीनियर' थे। लेकिन जाते-जाते यह बताना चाहिए कि पं. विष्णु दिगंबर से उनकी काफी घनिष्ठता थी। उसके संबंध में बात करेंगे ही। अब भातखंडेजी के शिष्य और अंतरंग स्नेही श्री. शंकरराव कर्नाड एक वकील थे। वास्तव में उनकी बदौलत नारायणरावजी की संगीत अभिरुचि और बढ़ी थी। किंतु विडंबना यह थी कि पारिवारिक परिस्थिति के कारण वे अपनी इस क्षुधा का समाधान नहीं कर पा रहे थे। अत: अपनी संगीत की भूख को अपनी संतान के माध्यम से पूरी करने की इच्छा उनके मन में उदित हुई। इसीका परिणाम था कि हमारे अण्णासाहब की संगीत-शिक्षा उनकी उम्र के छठे-सातवें वर्ष में ही शुरू हुई।

किंतु उसके संबंध में बात करने से पहले पृष्ठभूमि के तौर पर आपके परिवार के संबंध में कुछ अधिक जानकारी लेकर आगे बढ़ना ठीक होगा।

हमारे अण्णासाहब का जन्म ३१ दिसंबर १९०० को हुआ। ये भाई-बहन मिलके दस लोग थे। इनमें चार सदस्य, दो भाई और बहनें बचपन में ही भगवान को प्यारे हो गए थे। कुल चार भाई और दो बहनें जीवित रहे। अण्णासाहब अपने पिताकी सातवीं संतान थे। इनमें से बड़ी बहन का शादी के बाद स्वर्गवास हो गया। दूसरी बहन माणिकबाई ने उस जमाने में होनेवाले दहेज की कड़ाई और उससे पैदा होनेवाली समस्याओं को देखकर ब्याह ही न करने

का निश्चय कर लिया। श्रीमती माणिकबाई के इस फैसले के पीछे एक और कारण भी था। अण्णासाहब की मां, जो ससुराल में चंपूताई कहलाती थी, का स्वास्थ्य बहुत ही कमजोर रहा था। पैंतालीसवीं उम्र में ही उनका देहावसान हो गया। उस काल अण्णासाहब की उम्र केवल बारह वर्ष की थी। और वहीं पर एक बात का जिक्र करना ठीक होगा कि मां के दुर्बल स्वास्थ्य का गुणधर्म अण्णासाहब में भी उतर आया और आखिर तक वैसा ही रहा। तो घर की ऐसी दशा में श्रीमती माणिकबाई को भाइयों का और पूरे घर का ही भार अपने ऊपर उठाना पड़ा। फिर घर की जिम्मेदारियों को निभाते रहने की हालत में ब्याह का विचार भी वे कैसे कर सकती थीं? इधर अण्णासाहब के भाई रामचंद्र और दत्ताराम मैट्रिक तक ही पढ़ाई कर सके। कई कारणों से वे आगे पढ़ाई नहीं कर सके; नौकरी में ही लग गए। एक दूसरे भाई श्री गजाननराव और अण्णासाहब दो ही ग्रेज्युएट हो सके।

## शुभारंभ

संगीत की ओर सबसे ज्यादा रुझान श्रीकृष्णजी की याने अण्णासाहब की ही थी। उनकी आवाज अत्यंत मधुर और प्रवाहपूर्ण थी। उनका पद गाना सब को आकर्षक लगता। श्रीमान नारायणराव को इन्हींका भरोसा था। अपनी अधूरी रही संगीत-साधना को पुत्र श्रीकृष्ण के माध्यम से पूरा करने की आकांक्षा उनके मन में थी। उसकी परिपूर्ति का मार्ग वे खोज रहे थे और इसी बीच **श्री शंकरराव कर्नाड** से उनकी पहचान हो गई। कर्नाड जी भी संगीत में अपनी अच्छी तरक्की कर चुके थे। श्री नारायणराव की हायकोर्ट में उनसे मुलाकात हुआ करती थी। उन्होंने शंकररावजी से कहा" भाई, मेरे बेटे को स्वरज्ञान कराना है। किसी अच्छे शिक्षक का नाम सुझाइए। शंकररावजी ने श्रीमान **कृष्णभट्ट होनावर** का नाम उन्हें बताया। वे उन्हें स्वयं अच्छी तरह जानते थे। कृष्णभट्टजी, कैनरा सारस्वत ब्राह्मण थे। उनकी संगीत शिक्षा पतियाला घराने में उस्ताद कालेखां (उ. बड़े गुलाम अली के चाचा) के पास हुई थी। उनकी एक विशेषता यह थी कि वे स्वरज्ञान कराने में बड़े ही कुशल थे। **श्री शंकरराव कर्नाड कृष्णभटजी** को नारायणराव रातंजनकर के यहां लेकर उपस्थित हुए। नारायणरावजीने कहा– " देखिए पंडितजी, मेरे बच्चों को स्वरज्ञान कराना है। अर्थात् नारायणरावजी अपने दो बेटों दत्ताराम और श्रीकृष्ण को ही संगीत सिखाने का प्रबंध करना चाहते थे। शेष दो भाई छोटे थे, ३-४ साल के। मैंने बताया ही है कि नारायणरावजी संगीत-साधना की गंभीरता को भलीभांति जानते थे। इसलिए आगे चलकर अण्णासाहब की जो संगीत शिक्षा हुई वह बराबर नारायणरावजी के 'सुपरविजन' में ही हुई। और इसका फल बहुत सुंदर था। यह १९०६ की बात है। जब हमारे अण्णासाहब की उम्र केवल छः वर्ष की थी। ध्यान देने की बात है कि जिस जमाने में संगीत सीखना हल्के दर्जे का और हेय काम समझा जाता था उस काल में एक पिता अपनी खुद की निगरानी में अपने बेटों की विधिवत् संगीत शिक्षा का निर्वाह अपना एक दायित्व मानकर नितांत गंभीरता से करने को प्रस्तुत हुआ था। यह उपक्रम अण्णासाहब की संगीत-शिक्षा संपूर्ण होने तक चलता रहा। अण्णासाहब के मन में अपने पिता की इस महानता के प्रति कितनी कृतज्ञता भरी थी! इस बारे में वे स्वयं कहते हैं। " ..... He led me to the gate of the fairy land of music and made his and my life happy." सारांश यह कि 'संगीताचार्य' के रूप में अण्णासाहब के व्यक्तित्व का जो गठन हुआ, उसके मूल में उनके परमपिता नारायणरावजी

का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था।

नारायणरावजी ने गायनशिक्षा का आरंभ होने के पूर्व कृष्णभट्टजी को स्पष्ट शब्दों में चेतावनी दी थी कि- ''देखिए, पहले इन दोनों का स्वरज्ञान पक्का हो जाना चाहिए। इस बारेमें जबतक आपका और मेरा संतोष नहीं हो जाता तबतक यदि आपने एक भी बंदिश सिखाई, तो कल से आना बंद!'' नारायणरावजी की यह बात ऊपर से हमें कठोर लगेगी, किंतु उसमें संगीत-साधनासंबंधी उनकी बुनियादी दृष्टि के दर्शन होते हैं। दूसरी बात यह भी ध्यान में आती है कि उस काल भी संगीत-शिक्षा में स्वरज्ञान को किनारे रखकर रागदारी के गाने घोटावने का उतावलापन काफी मात्रा में दिखाई देता था। नारायणरावजी अपने बेटों को गहन रूप में संगीत की शिक्षा दिलाना चाहते थे। जाते जाते एक और बात यहीं कहनी चाहिए। जिसका विस्तार से बयान आगे होनेवाला ही है। अण्णासाहब के स्वभाव में एक खास ढंग की स्पष्टवादिता थी, जिसका उगमस्थान उनके पिता का व्यक्तित्व हो सकता है।

इस प्रकार १९०६ में दोनों भाइयों की संगीत शिक्षा का आरंभ हुआ। स्कूल से लौटते ही बच्चे गुरुजी के सामने बठे जाते थे। शुरू की इस शिक्षा में केवल अलंकार ही सिखाने का विधान था। स्वरों की उलट-पुलट आदि सब उसमें आती थी। लेकिन वस्तुत: यह तो इन बच्चों का खेलकूद का वयस था। गायन की इस क्लास की वजह से वह बंद हो गया था। स्कूल से आए तो गुरुजी तैयार बैठे हुए हैं। चाय-वाय ली और–''चलो बैठो अलंकार घोटने।'' तालीम कुछ पांच साढ़े पांच बजे शुरू हो जाती थी और साढ़े सात बजे तक जारी रहती थी। यह सिलसिला लगभग डेढ़ साल तक चला। इस बीच बड़े भैय्या दत्ताराम इस शिक्षाक्रम से थोड़े किनारे हट गए। वे उम्र में बड़े थे, थोड़ा सोच समझ रहे थे। उन्हें स्कूल के साथी चिढ़ाने लगे थे कि 'अरे यह नाटक में औरतों का पार्ट खेलेगा। ...वगैरे। वह जमाना ही ऐसा था कि जीवनसाधना के लिए किसी कला की उपासना करने की बात आम समाज में मंजूर ही नहीं थी। महाराष्ट्र में उस काल संगीत नाटकों की बड़ी धूम थी। स्त्रियों के पार्ट पुरुष ही किया करते। नाटक मंडली के मालिक लोग हमेशा गाना जाननेवाले कोमलवयस के बच्चों की खोज में रहा करते थे। दत्ताराम को स्कूल में जो फब्तियां सुननी पड़ती थीं उसके पीछे ये सब कारण थे। इन सब बातों का फल यह निकला कि दत्ताराम ने गाना सीखना बीच ही में छोड़ दिया। फिर श्रीकृष्णजी ही अकेले बैठने लगे।

रातंजनकर परिवार उन दिनों बंबई के गिरगांव उपनगर में 'बदामवाड़ी' विभाग में रहता था। उस काल आम लोगों को संगीत सुनने का अवसर मिलना बहुत दूभर रहा करता था। अत: इन बालकों की 'सा सा ग ग' की रटंत सुनने के लिए भी पास-पड़ोसवाले दस-पंद्रह रसिक व्यक्ति कभी-कभार आके बैठे जाते थे। इस प्रकार इन दो भाइयों की संगीत-शिक्षा आसपास के लोगों के आकर्षण का विषय बनी थी।

यह ठीक है कि कृष्णभट्ट जी की क्लास किसी कारण से आगे न चल सकी, किंतु अण्णासाहब के नसीब में संगीत की साधना लिखी गई थी। श्री नारायणरावजी ने तो पक्का इरादा किया था कि मैं श्रीकृष्ण को गायनकला में प्रवीण कराके ही रहूंगा। संयोग ऐसा रहा कि उस काल गायनाचार्य बालकृष्णबुवा इचलकरंजीकर के शिष्य **पं. अनंत मनोहर जोशी** तथा 'अंतुबुवा' (हमारी पीढ़ी के पं. गजाननराव जोशी के पिता) बंबई आकर ठहरे थे। नारायणरावजी ने इस अवसर का लाभ उठाया। यों बालकृष्णबुवा के दूसरे शिष्य पं. दिगंबर पलुसकर से भी उनकी

काफी पहचान थी।

किंतु उन दिनों वे अपने गांधर्व महाविद्यालय के कार्य के दौरान दीर्घ काल तक बंबई से बाहर थे। यह १९०९-१० की बात है। पं. अंतुबुवा की तालीम एक डेढ़ साल तक चली। याने इस प्रकार इस काल में अण्णासाहबपर ग्वालियर घराने के संस्कार हुए। इस घराने की तालीम में अलंकारों की अपेक्षा बंदिशों और रागदारी गीतों से ही शिक्षा का आरंभ होता है। यहां 'सा-सा रे-रे' में ज्यादा समय नहीं लगाया जाता। यमन, भूपाली जैसे रागों की बंदिशें सिखाना और उनका विस्तार करवा लेना, यह उनका तरीका होता है। तो डेढ़ साल तक इस प्रकार की तालीम अण्णासाहब को प्राप्त हुई।

**भातखंडेजी के दर्शन**

इसी क्रम में एक दिन श्री शंकरराव कर्नाड ने पं. भातखंडेसाहब के पास जिक्र किया कि बदामवाड़ी, गिरगाव में एक लड़का अच्छी तरह तैयार हो रहा है, आप उसे जरूर सुनिए। पं. भातखंडेजी को इन बातों में खास अभिरुचि इस अर्थ में थी कि उनकी यह दिली चाह रहती थी कि अच्छे घरों के लड़कों को संगीत-क्षेत्र में आ जाना चाहिए। अत: जब कभी इस प्रकार के प्रयत्नों के बारे में उन्हें मालूम हो जाता तब उसके प्रति वे आकर्षित हो जाते। अत: शंकररावजी का संकेत मान कर पंडितजी बिना निमंत्रण के उत्सुकतावश नारायणरावजी के घर उपस्थित हुए। पं. भातखंडेजी ने छोटे अण्णासाहब को सुना। कुछ प्रश्न भी पूछे और उनके स्वरज्ञान की परीक्षा ली। 'यह सुर गाओ, वह सुर गाओ। बारह सुरों का एक साथ आरोह-अवरोह करो; एक साथ 'सारेरे गगम' इस प्रकार के उतार चढ़ाव करके दिखाओ,' इत्यादि प्रकारों से उन्होंने परीक्षा ली। अण्णासाहब ने पंडितजी के सभी प्रश्नों के उत्तर ठीक ठीक बताए। सब सुनकर पंडितजी खुश हुए। कहा कि ऐसा ही चलने दो। आगे बहुत अच्छे गायक बनोगे तुम। पीठ पर हाथ फेरकर और आशीर्वाद देकर चले गए। उनका यह आशीर्वाद आगे सोलह आने सत्य साबित हुआ किंतु विधाता की लीला ऐसी है कि उस समय किसी को सपने में भी पता नहीं था कि अण्णासाहब के भाग्यविधाता स्वयं पंडित भातखंडे ही बननेवाले हैं।

पंडित भातखंडेजी का का घर पर आगमन श्री नारायणराव को अतीव उत्साहवर्धक लगा। वे स्वयं पंडितजी के महत्त्व को जानते थे और उनके उस समय चलनेवाले संगीतविषयक अभियान का भी दूर से उन्हें पता था। वकील मंडलियों में उठक-बैठक होने से पं. भातखंडेजी से नारायणराव का प्राथमिक परिचय तो हो ही गया था। इसी बीच अपने ही घर पर उनके दर्शनों का संयोग प्राप्त हुआ। संभव है इस बढ़ते परिचय के दौरान नारायणराव के संगीत संबंधी आकर्षण और संस्कृत भाषा प्रेम का भी पता पंडितजी को लगा हो। इसी काल याने १९१० में पं. भातखंडेजी का हिंदुस्तानी संगीत के अभिनव शास्त्र को विधिवत् प्रस्तुत करनेवाला युगांतरकारी संस्कृत ग्रंथ **'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्'** प्रकाशित हुआ। और भातखंडेजी ने "With best compliments to Narayan Govind Ratanjankar" लिखकर श्री नारायणराव के पास भिजवा दी। तब तक अण्णासाहब के पिताजी का स्वास्थ्य काफी गिर गया था। इसकी वजह से समय के पूर्व ही उन्होंने पेन्शन ली थी। समय खाली था और ऐसे में यह पुस्तक हाथ आ गई। उन्होंने उसे बड़े चाव से पढ़ डाला और तुरंत उसका उपयोग भी कर लिया। उसके बारे में बताने

से पहले नारायणरावजी के संस्कृत ज्ञान के संबंध में एक घटना का जिक्र करना चाहता हूं। इस परिवार की आर्थिक दशा शुरू से ही चिंताजनक थी। बी.ए. की परीक्षा में बैठना चाहते थे, परंतु बी.ए.के टर्म्स भरने के लिए उनके पास पैसा नहीं था। तब उन्होंने व्याकरणविषयक 'समासचक्र' नामक परीक्षोपयोगी पुस्तिका संस्कृत में लिख डाली, जिसे उस जमाने के सुप्रसिद्ध निर्णयसागर प्रेस ने प्रकाशित किया। इस एक बात से ही उस छोटी पुस्तक के महत्त्व का संकेत मिलता है। परंतु पैसे के तकाजे के कारण नारायणरावजी ने केवल सौ रुपये में पुस्तिका के 'कॉपीराइट' को बेच दिया और उस राशिसे बी.ए. के टर्म्स भरकर उस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए। अब 'कॉपीराइट' दूसरे को दिया, इस वजह से लेखक का नाम पुस्तक पर नहीं आया, और उस पुस्तक की विपुलतर प्रतियां उस काल उठ गई थीं; लेकिन श्री नारायणराव को उसकी परवाह नहीं थी। उन्हें 'बी.ए.' का बेड़ा पार करना था। यहां ध्यान देने की बात यह है कि हमारे अण्णासाहब में जो विद्याप्रेम, संस्कृत भाषानुराग और संगीत की सच्ची प्यास थी उसके मूल स्रोत उनके 'धन्य-व्यक्तित्व' पिताश्री थे।

'श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्' को पढ़ने के पश्चात् श्रीमान नारायणरावजी को विश्वास हो गया कि पं. भातखंडेजी वास्तवमें ही बड़े व्युत्पन्न विद्वान् एवं शोधकर्ता अधिकारी पुरुष हैं। हमारे प्राचीन ग्रंथों के निचोड़ का उपयोग करते हुए प्रतिष्ठित गायक-वादकों से प्राप्त साहित्य पर आधारित 'लक्ष्य' अर्थात प्रचलित संगीत की सुसंबद्ध व्याख्या करनेवाले उस ग्रंथ ने उन्हें बहुत ही प्रभावित किया। इधर अण्णासाहब को पं. अनंत मनोहरजी की तालीम चल ही रही थी। उस काल, जहां तक मैंने बात सुनी है, राग हमीर सिखाया जा रहा था। इस राग में मं प ध नि सां, मं प ग म ध, मं प ध नि सां-ऐसे 'ग्रह' आ रहे थे। हमेशा की तरह तालीम के समय श्री नारायणरावजी भी आसपास ही हुआ करते थे। इन स्वरावलियों को सुनकर उन्होंने श्री अंतुबुवा से कहा- "इस ग्रंथ में 'मं प नि ध सां' लिखा हुआ है। कृपया आप इसके मुताबिक सिखाइए।" अंतुबुवा अपने ढंग को त्यागने के लिए कैसे तैयार होंगे। जब मतभेद हो गया, तब यह तालीम वहींपर रुक गई और अब नए गुरु की तलाश आरंभ हो गई।

### ग्वालियरी प्रभाव

यह घटना १९१० के उत्तरार्ध की है। संयोगवश इन्ही दिनों पं. विष्णु दिगंबरजी लाहोर से लौटे थे और बंबई में उन्होंने अपना गांधर्व महाविद्यालय शुरू किया था। उन्होंने भी अपने महाविद्यालय के लिए ईस्ट केनेडी ब्रिज के पासवाला बदामवाड़ी, जो कि एक तरह से संगीतकारों की बस्ती थी, का परिसर चुना था। अब नारायणरावजी का संगीत सुनने का शौक तो था ही और एक प्रभावशाली महफिली गायक के नाते उस काल 'पं. विष्णुबुवा' का नाम सबके मुख में था। आप प्रति सप्ताह महाविद्यालय में संगीत का प्रदर्शन आयोजित करते, जिसमें अपने शिष्यों के बाद स्वयं भी गाना सुनाते। इस कार्यक्रम में नारायणराव बीच बीच में अपने पुत्र श्रीकृष्ण को लेकर जाते। अण्णासाहब ने इस दौरान पं. विष्णु दिगंबर का गाना भरपूर सुना। वे हम शिष्यों को बताते थे कि एक बार प्रार्थना समाज के पासवाले अपने घर में बैठे थे और करीब दो सौ गज दूरी पर स्थित ब्राह्मण समाज के हॉल में विष्णुबुवा का गायन हो रहा था। उस वक्त गहरी शांति को भेद कर शंकरा राग का तार पंचम अण्णासाहब के कानों तक स्वाभाविक तौर पर पहुंच रहा था। ऐसी बुलंद आवाज! अण्णासाहब हमें यह भी बताते थे

कि जबतक विष्णुबुवा पारंपरिक ग्वालियर गायकी को प्रस्तुत करते रहे, जबतक रामनाम में मगन हो जाने की ओर उनकी प्रवृत्ति नहीं हुई तक तब उनके जोड़ का कोई विरला ही गायक उस जमाने में रहा होगा।

तो पं. विष्णु दिगंबर से नारायणरावजी का अच्छा परिचय था। यहां तक कि बुवासाहब उनके घर पर अक्सर जाया करते थे। स्नेहभाव बढ़ गया था। इतना ही नहीं तो अब गुरुबंधु अंतुबुवा की तालीम बंद हो जाने के बाद उन्होंने नारायणरावजी से कहा कि इसे हमारे पास भेज दो हम इसे सिखाएंगे। परंतु यह प्रभाव कार्यरूप में परिणत नहीं हो सका। क्योंकि बुवासाहब अपने विद्यालय के कार्य में इतने व्यस्त रहते कि स्वयं शिक्षा प्रदान करने के लिए पर्याप्त अवसर मिलना ही दूभर था। इधर गांधर्व महाविद्यालय के 'रजिस्टर' में 'श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर' नाम दर्ज हो चुका था। किंतु बुवासाहब से व्यक्तिगत तालीम मिलने की संभावना न देखकर दूसरे दिन से ही अण्णासाहब का विद्यालय जाना बंद हो गया।

ग्वालियर घराने के गुरुओं के संस्कार अण्णासाहब पर किशोर वयस में हो जानेका परिणाम आपके भावी प्रगल्भ गायन पर हुए बिना कैसे रहता? क्योंकि पं. विष्णु दिगंबर को भी आपने पर्याप्त सुना था और उन्हींके गुरुबंधु से प्रत्यक्ष शिक्षा भी प्राप्त की थी।

इस संबंध में आगे उनकी गायन-शैली का सविस्तार विवेचन करते समय बात होगी ही। यहां इतना ही संकेत देता हूं कि ग्वालियरी प्रभाव उनकी गायन-शैली में पैबंद के रूप में नहीं रहा, बल्कि शैली का एक अभिन्न अंग बनकर रहा। यहां संबंधित एक दूसरी ही बात पर मैं आता हूं। अभी बात चल रही थी गांधर्व महाविद्यालय की। वहां व्यक्तिगत शिक्षा की सुविधा न होने से पुनश्च दूसरे दिन से पं. अनंत मनोहरजी की ही तालीम शुरू हो गई। इससे मालूम होता है कि अण्णासाहब के पिता श्री नारायणराव अपने पुत्र की संगीत-शिक्षा के क्रम को खंडित करना नहीं चाहते थे।

परंतु मध्यवित्त वर्ग के परिवार के सामने हमेशा आर्थिक और अन्य आनुषंगिक समस्याएं खड़ी ही रहती हैं। समय के पूर्व ही १९१० में श्री नारायणराव नौकरी से निवृत्त हुए थे। रातंजनकर परिवार को नारायणराव की अल्प-सी पेन्शन पर घर चलाना कठिन लग रहा था। और अण्णासाहब के माता-पिता को अस्वास्थ्य की वजह से कुछ काल तक बाहर रहना आवश्यक था। अत: कुछ दिनों के लिए इस परिवारने पुणे को स्थलांतर किया। पुणे निवास काल में अण्णासाहब की माताजी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया और उनकी वैद्यकीय चिकित्सा के लिए बंबई लौटना आवश्यक हो गया। लेकिन इन बाधाओं के बीच में भी पुत्र की संगीत-शिक्षा पर नारायणरावजी का बराबर ध्यान था। बंबई आते ही उन्होंने अण्णासाहब को पं. अंतुबुवा के 'गुरु समर्थ गायन वादन विद्यालय' में दाखिल कर दिया। यहां सर्वसामान्य शुल्क देकर पढ़ना था और पहले घर पर होनेवाली तालीम जैसी स्थिति यहां नहीं थी, फिर भी सिलसिला न टूटने की दृष्टि से यह उपाय उपयुक्त ही रहा। 'गुरु समर्थ गायन वादन विद्यालय' में संगीत की दो एक पाठ्यपुस्तकों से पाठ पढ़ाए जाते थे। अण्णासाहब ने इसका उपयोग अपने लिए 'रिविजन' के तौर पर कर लिया। कहें तो यह शिक्षा एक अंतरिम व्यवस्था की भांति ही चलती रही।

अण्णासाहब की संगीत-साधना की यात्रा पर दृष्टि डाली जाए तो एक रोचक तथ्य प्रतीत होता है। उनके बारे में विधि का विधान ऐसा था कि उन्हें जो जो गुरु प्राप्त हुए वे सभी उस जमाने के अत्युच्च कोटि के गायक एवं विद्वान थे। इसमें एक तिरछी बात यह भी रही कि

संगीत-शिक्षा का सिलसिला आरंभिक दिनों में अबाध रूप में नहीं चल सका। श्री नारायणराव पुत्र की संगीत-शिक्षा को लेकर मन ही मन चिंतित हो रहे थे। अर्थाभाव के कारण व्यक्तिगत रूप में तालीम दिलवाने की गुंजाइश नहीं के बराबर थी। और किसी श्रेष्ठतर गुरु के मार्गदर्शन के बिना अपेक्षित फल की प्राप्ति होना असंभव था।

## सुवर्णसंयोग

इस बीच १९११ में ही एक ऐसा संयोग निकल आया कि सारी समस्याएं अपने आप हल हो गईं। एक दिन ट्राम में (उस जमाने का रेलनुमा शहरी वाहन) श्री नारायणराव जा रहे थे, तो पासवाले सीट पर पं. भातखण्डे मिले। पंडितजी के साथ नारायणराव का स्नेह स्थापित हो ही चुका था। उन्होंने आस्थापूर्वक पूछा-

"लड़के का गायन का अभ्यास ठीक चल रहा है न?"

तब नारायणरावजी ने बीच के गतिरोध के बारे में उन्हें बताकर कहा कि, आप ही कोई उपाय बताएं तो भला होगा; क्योंकि श्रीकृष्ण में सीखने की बड़ी लगन है।"

भातखंडेजीने कहा, "आप चिंता न कीजिए। उसे लेकर मुझे घर पर मिलिए: मैं उसकी संगीतशिक्षा का कोई प्रबंध कर लूंगा।"

हम कल्पना कर सकते हैं कि पंडितजी का यह स्नेहभरा आश्वासन सुनकर नारायणरावजी को कितनी प्रसन्नता हुई होगी। उनके संकेत के अनुसार 'बिट्टू' को लेकर नारायणराव पंडितजी के घर पहुंच गए। बातों के दौरान पंडितजी ने देख लिया कि इस लड़के में सचमुच गाना सीखने की गहरी लगन है। तब उन्होंने अण्णासाहब को गायन सिखाने के संबंध में जो सुझाव दिया, उसे सुनकर पिता और पुत्र दोनों के संतोष का ठिकाना न रहा। पंडितजी ने कहा –

"मैं 'गायन उत्तेजक मंडली' के क्लब में जाया करता हूं। आप रोज संध्यासमय अपने बेटे को वहां भेजिए। मैं स्वयं उसे तालीम दूंगा।"

अब यह 'गायन उत्तेजक मंडली' संगीतशौकीन पारसी बंधुओं ने चलाई थी, जहां गायन-वादन की शिक्षा देने का प्रबंध भी किया गया था। इतना अच्छा प्रस्ताव आ जाने पर अण्णासाहब का पारसी क्लब में रोज शाम को जाना शुरू हो गया। उस समय उनकी अवस्था छोटी होने के कारण श्री नारायणराव रोज शाम का समय निकाल कर उनके साथ मंडली के स्थान पर उपस्थित हो जाते। मंडली के घर में पीछेवाले कमरे में पंडितजी अकेले अण्णासाहब को अलग से सिखाया करते थे।

पंडितजी ने संगीत-प्रशिक्षण की अपनी एक सुविहित पद्धति बना ली थी। प्रथमत: पढ़ाए जानेवाले राग की स्थूल रूपरेखा को स्पष्ट रूप में समझा देते। उसके बाद नोम् तोम् के आलाप सिखाने का क्रम आता। अंत में रागरूप की पहचान छात्र को हुई है, इसका विश्वास हो जाने पर वे उस राग के गीत (बंदिश) तान और फिरत सिखाते।

अब अण्णासाहब को मनोवांछित गुरु का मार्गदर्शन मिलने के इस सुनहरे अवसर से और अधिक लाभ उठाना उचित जानकर अपनी अनेक समस्याओं के बावजूद नारायणरावजी ने अपने 'बिट्टू' के लिए एक तंबूरा और तबला-बायां खरीद लिया। फिर समय निकालकर वे स्वयं अण्णासाहब से तीन चार घंटे का रियाज करवाने लगे। इसी बीच १९१२ में अण्णासाहब की माताजी श्रीमती लक्ष्मीबाई का स्वर्गवास हो गया। और सब परिवार बांद्रा उपनगर में स्थलांतरित

हुआ। किंतु तिसपर भी श्री नारायणराव का 'गायन उत्तेजक मंडली' में पुत्र को लेकर जाने का उपक्रम जारी ही रहा।

**करीमखांसाहब**

बांद्रा आ जाने के बाद भी १९१४ तक संगीत-साधना का सिलसिला अटूट रूप से चलता रहा। किंतु पारिवारिक कारणों से इन सबको बंबई छोड़ना पड़ा और वे अहमदनगर में आकर बस गए। तो यहां आ जाने पर तालीम का सिलसिला टूट गया। फिर भी अण्णासाहब अपने तीन गुरुओं- कृष्णभट्ट, अंतुबुवा और भातखंडे प्राप्त विद्या को अपनी ओर से दुहराकर रियाज करते रहते थे। अहमदनगर में पास-पड़ोस के लोगों में इस किशोरवयीन बालगायक के लिए कुतूहल जगना स्वाभाविक ही था। इसी बीच एक और महान गायक का प्रेम पाने का अवसर अण्णासाहब को प्राप्त हुआ। श्री नारायण लक्ष्मण रानड़े नामक एक मान्यवर वकील थे, जो संगीत के बड़े ही शौकीन थे। किराने घराने के खलीफा उस्ताद अब्दुल करीमखां साहब के वे परम अनुरागी थे। खांसाहब जब जब अहमदनगर पधारते तब इन्हीं वकील के यहां ठहरते। ये महोदय भी अण्णासाहब के गायन से काफी प्रभावित हुए थे। एक बार अब्दुल करीमखां अहमदनगर पधारे तब वकीलसाहब ने अण्णासाहब का गाना उन्हें सुनवाया। खांसाहब भी उनका गाना सुनकर प्रसन्न हुए। खांसाहब इस किशोर संगीतसाधक पर इतना रीझ गए कि उन्होंने नारायणराव से कहा-

"इस बच्चे को हमें दे दो। हम उसे तैयार करेंगे।"

यह सुनकर नारायणरावजी बड़े आनंदित हुए। किंतु उन्होंने सावधानी के साथ कहा-

"खांसाहब, वह तो फिलहाल पं. भातखंडेजी के पास सीखता है। अगर पंडितजी की इजाजत मिल जाए तो मुझे आपत्ति नहीं होगी।"

बात यह थी कि उन दिनों श्रुतिविचार को लेकर श्री कृष्णाजी देवल और पश्चिमी संगीतज्ञ क्लेमंटस् तथा उस्ताद करीमखां के बीच जोरदार बहस चल रही थी। काफी मतभेद थे। इसलिए अण्णासाहब के बारे में खांसाहब का सुझाव वहीं पर रह गया। किंतु एक लाभ अवश्य हुआ कि अहमदनगर के उस निवासकाल में अण्णासाहब को संगीत का अभ्यास जारी रखने की दृष्टि से रानड़ेमहोदय से भरपूर प्रोत्साहन मिला और दूसरा लाभ यह रहा कि करीमखांसाहब जैसी हस्ती के निकट संपर्क में रहने का और उनसे अप्रत्यक्ष रूप में ही सही संस्कार ग्रहण करने का सुअवसर मिला। १९१६ में रातंजनकर परिवार पुनश्च बंबई रहने आ गया और पं. भातखंडेजी के मार्गदर्शन में संगीत-साधना का सिलसिला फिर से जुड़ गया।

बात यह हुई थी कि इस बीच १९१७ में 'गायन उत्तेजक मंडली' का कारोबार नए व्यवस्थापकों के हाथ आ गया। पं. भातखंडेजी उनके साथ अलग हो गए। इसकी देखादेखी कुछ अन्य सदस्यों ने भी मंडली से अपना संबंधविच्छेद कर लिया। उन लोगोंने 'शारदा संगीत मंडल' नाम से अपने एक स्वतंत्र 'समाज' का गठन किया और पंडितजी से प्रार्थना कि आप इस मंडल के सहभागी सदस्य बन जाइए और गायन की कक्षाओं का संचालन कीजिए। उसके अनुसार ये कक्षाएं बंबई के फ्लोरा फाउंटन विभाग में 'गुड लाइफ लीग' नामक संस्था के भवन में चलने लगीं। वहां पर पंडितजी की तालीम का सिलसिला अण्णासाहब के लिए फिरसे जारी हो गया। किंतु उसमें कुछ अन्य बातें भी जुड़ गईं, जो अण्णासाहब के अनुभव को और समृद्ध

करनेवाली ही रहीं।

उधर 'गायन उत्तेजक मंडली' में घटित एक घटना का उल्लेख भी आवश्यक है। उत्तर प्रदेश अकबरपुर के तालुकदार ठाकुर नवाब अली, जो आगे चलकर 'राजा' कहलाने लगे अपने को पं. भातखंडेजी का अनुयायी मानने में गौरव का अनुभव करते थे। उन्हें बचपन से ही संगीत का शौक था। उनके आश्रय में नजीरखां - जो काले नजीरखां के नाम से अधिक जाने जाते थे - एक व्यावसायिक गवैये की हैसियत से तैनात थे। ठाकुर नवाब अली को पंडितजी के संगीतविषयक कार्य के विषय में बहुत गहरा कुतूहल था। तो पंडितजी के कार्य की आंखोंदेखी जानकारी प्राप्त करने और रागों आदि के बारे में अधिक जानकारी पाने के लिए उन्होंने काले नजीरखांसाहब और उनके दो भाई छज्जू खां और खादिम हुसेन को बंबई भेज दिया। ये तीनों भाई बंबई आ गए और भेंडीबाजार नामसे पहचानी जानेवाली बस्ती में उन्होंने अपना घर किया। इसलिए उन्होंने जो संगीतशैली आगे प्रचलित की वह 'भेंडीबाजार घराने' की गायकी के नाम से पहचानी गई। भातखंडेजी ने इन भाइयों के द्वारा अपने मार्गदर्शन में पारसी और गुजराती भाइयों को संगीत सिखाने का कार्य जारी रखा। पं. भातखंडेजी से इन तीनों भाइयों को जो मार्गदर्शन मिलता था उसका उपयोग उन्हें 'गायन उत्तेजक मंडली' में पारसी भाइयों को गायन सिखाने के लिए होता था। आगे नजीरखांसाहब ने महाराष्ट्र की विख्यात गायिका श्रीमती अंजनीबाई मालपेकर को तैयार किया। श्रीमती अंजनीबाई के गंडाबंधन के समय वहां पं. भातखंडे मौजूद थे। नजीरखांसाहब ने कहा, "यहां गुरुवर भातखंडेसाहब हाजिर हैं, मैं उन्हींके हाथों अपना गंडा अंजनीबाई को बंधवाता हूं। (और इस घटना को मैंने स्वयं अंजनीबाई के मुख से सुना है।)... तो ऐसे पवित्र खुले वातावरण में अण्णासाहब को भातखंडेजी से तालीम मिल रही थी।

'शारदा संगीत मंडल' में जो चुने हुए पारसी और गुजराती लोग सीखने के लिए आते थे, उनमें **वाड़ीलाल शिवराम नायक** नाम के गुजराती सज्जन थे। वे उन दिनों 'गुजरात देसी नाटक मंडली' में संगीत-निर्देशक थे; संस्कृत भाषा के प्रेमी और विद्वान्। वे १२ साल तक उपर्युक्त नजीरखांसाहब के पास गाना सीखे हुए थे। बाद में खांसाहब ने अपनी ओर से श्रीमान वाड़ीलाल को पंडितजी के पास भेज दिया यह कहकर कि–"भैया, जितना मेरे पास था उतना मैंने तुम्हें दे दिया, अब तुम पंडितजी के पास जाओ।" इस प्रकार श्री वाड़ीलाल और श्री शंकरराव कर्नाड़ हमारे अण्णासाहब के गुरुभाई हो गए। उस हिसाब से देखें तो ये लोग भी 'शारदा संगीत मंडल' में कक्षाएं लेते थे। श्री शंकरराव पेशेवर वकील होने से शिक्षाकार्य में सहभागी नहीं होते थे। लेकिन मैंने ऐसा सुना है कि पंडितजी जब कभी कोई रचना करते तो पहले शंकरराव को दिखाते । याने एक तरह से वे उनके समीक्षक थे, उस रचना का मूल्यमापन करके उसे 'पास करनेवाले'।

वाड़ीलालजी को तो पंडितजी का सान्निध्य ३० वर्ष तक मिला। इससे पंडितजी क्या कहना चाहते हैं; इसे वे पहले ही समझ जाते थे । अण्णासाहब हमें बताते थे कि, 'पंडितजी कर्नाड़, वाड़ीलाल और खुद मुझे तीन-तीन घंटे सामने बिठाकर स्थायी-अंतरे घुटवाते थे मैं जैसे गाता हूं, वैसा गाओ, ऐसा कहते थे। बाद में स्मरण के लिए अपने हाथ की लिखी नोटेशन की कापी हमें देते थे। याने सिखाते समय वे नोटेशन का उपयोग नहीं करने देते थे।

## सर्वार्थ में गुरु

सच तो यह है कि पं. भातखंडे सभी अर्थों में अण्णासाहब के गुरु थे। आप उनके शिक्षक, पथप्रदर्शक, उनका व्यक्तित्व गढ़नेवाले और उन्हें एक से एक संगीतविषयक अवसर दिलवाकर उनके अनुभव को समृद्ध करनेवाले महागुरु थे। मैंने जैसे अभी बताया पंडितजी ने अपने मार्गदर्शन में अण्णासाहब को शारदा संगीत मंडल में गायन सिखाने का अनुभव देना शुरू कर दिया था। इसीके साथ पंडितजी ने अपने सांगीतिक अभियान में हिंदुस्थानी संगीत के इतिहास में अपनी अमिट छाप छोड़नेवाली जो संगीत परिषदें आयोजित कीं उन परिषदों में वे अण्णासाहब को अपने साथ लेते गए; इतना ही नहीं तो १९१६ में हिज हाइनेस महाराज सयाजीराव गायकवाड़ के उदार आश्रय में और पंडितजी के मार्गदर्शन एवं नेतृत्व में बड़ौदा में जो संगीत परिषद आयोजित हुई, उस परिषद में पंडितजी ने अपने सोलह वर्षीय शिष्य का गायन भी भारतभर के जानेमाने संगीत कलाकारों की उपस्थिति में प्रस्तुत किया। और इस सिलसिले में एक दूसरी विशेष घटना घटित हुई, जिसने अण्णासाहब के भावी सांगीतिक जीवन पर अत्यंत गहरा असर पैदा किया इसके प्रेरक और मध्यस्थ पंडितजी ही थे। वह घटना थी फैयाजखांसाहब का गंडाबंध शिष्य बनने की।

अण्णासाहब को यह जो सुवर्ण अवसर प्राप्त हुआ, उसकी पृष्ठभूमि का बयान करना ठीक होगा। सभी लोग जानते हैं कि बड़ौदा के महाराजा श्रीमान **सयाजीराव गायकवाड़** स्वयं एक विद्वान, व्युत्पन्न एवं गंभीर कलाप्रेमी महानुभाव थे। आपके कार्यकर्तृत्व का प्रभाव न केवल बड़ौदा रियासत पर बल्कि व्यापक रूप से सुदूर तक फैला हुआ दिखाई देता है। उनकी बहुआयामी उद्भावनाओं में संगीत का क्षेत्र कैसे छूट सकता था? समूचे सांस्कृतिक विश्व में सच्ची ईमानदारी और गहरी लगन से कुछ नया कर दिखानेवालों की ओर महाराज का ध्यान बरबस खिंच जाता था और वे ऐसे व्यक्तियों को प्रोत्साहन तथा सक्रिय सहायता प्रदान करके उनके कार्यकौशल का अपनी रियासत के उन्नयन में उपयोग कर लेने में निरंतर तत्पर रहते थे। कहने की आवश्यकता नहीं, पं. भातखंडेजी का नाम अबतक उनके पास पहुंच ही चुका था।

उस समय महाराजा के सामने अपनी रियासत के संगीत विद्यालय की समस्या थी। इस विद्यालय का निर्माण दक्षिण के एक परिश्रमी, बुद्धिमान, संगीतवेत्ता मौलाबख्श ग्रिस्से खां ने किया था और पीछे रियासत बड़ौदा का तत्त्वावधान उसे प्रदान किया गया था। किंतु अब खां मौलबख्श का इन्तकाल हो गया था और उनके पुत्र दादू मियां को विद्यालय चलाने में उतनी सफलता नहीं मिल रही थी। १९१५ तक तो उसकी हालत बहुत गिर गई थी। महाराजा इसी सोच में थे कि किसी श्रेष्ठ जानकार व्यक्ति के परामर्श से विद्यालय को पुनः उभारा जाए। उनके सामने पंडितजी का ही नाम आया और उन्होंने आपको ससम्मान बड़ौदा आने का निमंत्रण दिया।

महाराजा गायकवाड़ ने पंडितजी के साथ संगीतशिक्षा और विद्यालय के संबंध में विचारविनिमय किया। इन बातों के दौरान संगीत की विद्यमान स्थिति के संबंध में भी चर्चा हुई। महाराजा को पंडितजी का यह विचार बहुत समयानुकूल लगा कि हमारे संगीत में रागनियम, बंदिशों के शब्दरूप आदि के बारे में अलग अलग घरानों में जो परले सिरे के मतभेद हैं उन्हें कम करना जरूरी है और उसके लिए अन्यान्य घरानेके गायकों, वादकों तथा संगीतशास्त्रज्ञों एवं

विचारकों को एक मंच पर बुलाकर उनके मतभेद को मिटाने का, कम से कम हल्का करने का, प्रयास होना चाहिए। महाराज ने कुछ सोचकर कहा–

"देखिए, मुझे एक कल्पना सूझती है। आपके विचार को कार्यरूप में लाने की दृष्टि से एक अखिल भारतीय संगीत परिषद का आयोजन किया जाए, तो कुछ हल निकल आएगा।"

अब सत्य तो यह था कि स्वयं पंडितजी ही अरसे से इस प्रकार की परिषद को आयोजित करने के लिए उत्सुक थे। उन्होंने चर्चा को ही ऐसी दिशा दे दी कि महाराजा की तरफ से ही ऐसा प्रस्ताव आ जाए। और वैसा ही हुआ! पंडितजी ने महाराजा की इस कल्पना पर साधुवाद प्रकट करते हुए कहा कि यह तो एक उच्च कोटि की संगीत-सेवा हो जाएगी । तब महाराजा ने कहा–

"ठीक है, आप आगे बढ़िए। हम बड़ौदा में परिषद का आयोजन करेंगे। खर्च और अन्य सभी सहायता आपको रियासत से मिलेगी।"

इस निर्णय के अनुसार १९१६ के मार्च महीने में बड़ौदा में सबसे पहली 'अखिल भारतीय संगीत परिषद' का अधिवेशन भव्य रूप में संपन्न हुआ। परिषद में हिंदुस्तानी एवं कर्नाटक दोनों शैलियों के गण्यमान्य कलाकारों तथा शास्त्रकारों ने भाग लिया था। इस परिषद में पंडितजी के साथ उपस्थित होने का अवसर अण्णासाहब को मिला। इतना ही नहीं तो पंडितजी ने परिषद के गाने-बजाने के प्रोग्राम में अपने इस प्रिय शिष्य का गायन भी आयोजित किया। सभी मान्यवर श्रोताओं को अण्णासाहब का गायन बहुत पसंद आया। श्रोताओं में महारानी श्रीमती चिमणाबाई भी थीं, जो पंडितजी से गाना सीखती थीं।

## परिषद के सुपरिणाम

यह परिषद अण्णासाहब के लिए अनेक दृष्टियों से लाभकर सिद्ध हुई। एक तो उन्हें उच्चतम स्तर की महफिल में अपना गायन प्रस्तुत करने का बहुमूल्य अवसर मिला। दूसरे, अखिल भारत के श्रेष्ठ गायक, वादक कलाकारों की प्रस्तुतियां सुनने का मौका उन्हें सर्वप्रथम प्राप्त हुआ और उच्चस्तरीय महफिली गायन किसे कहते हैं इसकी एक शकल उनके मन पर अंकित हुई। परिषद में दरबारगायक आफताब-ए-मौसिकी उस्ताद फैयाजखां का गायन सुनकर तो वे परितृप्त हो गए। इसके सिवा परिषद में जो सैद्धांतिक चर्चाएं हुईं उसका भी गहरा संस्कार उनकी संगीत चेतना पर हुआ। इस सिलसिले में एक विशेष बात का बयान करना आवश्यक है, जिसमें पं. भातखंडेजी के आदर्श गुरु-पन के अनोखे दर्शन हमें होते हैं। वे अपने प्रिय 'बाबू' की संगीत-साधना का मार्ग हर प्रकार से निरापद करना चाहते थे। उन्होंने देख लिया था कि 'बाबू' की संगीत शिक्षा में रुकावट पैदा करनेवाली अड़चन एक ही है और वह है रातंजनकर परिवार की आर्थिक विवंचना। उसे दूर करना जरूरी है। पंडितजी ने परिषद के दौरान महाराजा सयाजीराव और महारानी चिमणाबाई के साथ अण्णासाहब की मुलाकात करवाई। उन्होंने बताया,

"महाराज, यह युवक बड़ा होनहार है। फिलहाल मेरे पास संगीत की शिक्षा ले रहा है। किंतु इसके घर की आर्थिक हालत उतनी अनुकूल नहीं है। यदि आप इसे कुछ विद्यावेतन मिलने का प्रबंध कर दें तो इसकी साधना आगे चल पाएगी और वह एक बढ़िया गायक बन सकेगा।"

एक तो महाराजा सयाजीराव पंडितजी को बहुत मानते थे और दूसरे महारानीजी के तो

वे संगीत गुरु थे। इसलिए पंडितजी के इस अनुरोध को महाराजाने तुरंत मंजूर कर दिया। किंतु आखिर वे 'महाराज' थे; अपने प्रत्येक निर्णय में अपनी रियासत के लाभ को प्राथमिकता देनेवाले और साथ ही उस निर्णय को रचनात्मक दिशा में मोड़नेवाले। उन्होंने वजीफा देने की बात तो स्वीकार ली; किंतु उसके लिए दो शर्तें रखीं। एक यह कि लड़के को बड़ौदा में ही रहना होगा और दूसरी यह कि बड़ौदा रहते हुए संगीत के अध्ययन को भी जारी रखना होगा। पंडितजी ने कुछ दूर की सोचकर इसकी हामी भर दी और इसीके साथ अपने भावी संगीत कार्य की भलाई की दिशा में सहायक हो सकनेवाली एक छोटी प्रार्थना भी उसमें जोड़ दी। उन्होंने महाराजा से कहा-

"ठीक है, आपकी ये दोनों शर्तें मुझे मंजूर हैं। किंतु मेरी एक छोटी-सी प्रार्थना है। लड़का बड़ौदा में रहेगा और अपनी अन्य शिक्षा को जारी रखते हुए संगीत-साधना भी करेगा। किंतु इस दरबार के गायक उस्ताद फैयाजहुसेनखांसाहब से तालीम मिलने का प्रबंध आप कर दें तो बहुत अच्छा होगा।"

पंडितजी के इस सुझाव को स्वीकारने में महाराजा को कोई आपत्ति होने का कारण ही नहीं था, सो वह बात भी उनके मन के मुताबिक हुई। वजीफे के लिए माहवार चालीस रुपये की राशि मंजूर हो गई, जो उस काल के हिसाब से पर्याप्त से अधिक थी। अब हम देख सकते हैं कि पंडितजी ने एक साथ कई प्रकार की बातें साध ली थीं। इसमें पहली बात यह थी कि उन्होंने रातंजनकर परिवार की आर्थिक विवंचना को कुछ वर्षों तक हल कर दिया था। क्योंकि अब नारायणरावजी की पेन्शन और अण्णासाहब का विद्यावेतन, दोनों को मिलाकर इस परिवार का योगक्षेम सुचारु रूप से चल सकता था, बशर्ते कि वे सब बड़ौदा में ही आकर रहते; और आगे वैसा ही हुआ। दूसरी बात यह थी कि अण्णासाहब की विद्यालय की और तत्पश्चात् कॉलेज की पढ़ाई अबाध रूप से चलनेवाली थी। तीसरा लाभ यह था कि उस कालखंड में अखिल भारत में प्रथम क्रमांक पर आसीन, रंगीले घराने के उस्ताद आफताब-ए-मौसिकी फैयाजखांसाहब की तालीम पांच वर्ष तक मिलने की व्यवस्था हो गई और वह भी बिना किसी गुरु-दक्षिणा के! इसमें एक चौथा लाभ भी था, जो अत्यंत सार्थक था और पंडितजी की सूझ-बूझ को प्रमाणित करनेवाला था, जिसका अस्पष्ट-सा संकेत मैंने शुरू में दिया था। फैयाजखांसाहब से अपने शिष्य को तालीम दिलवाने के पीछे पं. भातखंडेजी का का एक विशिष्ट उद्देश्य था। उस जमाने के संगीत-क्षेत्र की हवा को देखकर पंडितजी ने यह बखूबी जान लिया था कि हमारे 'बाबू' ने मुझसे कितनी भी विद्या सीख ली हो, किंतु जब तक किसी जाने-माने उस्ताद के साथ उसका नाम नहीं जुड़ जाता तबतक इस क्षेत्र में उसकी कोई पूछ नहीं होगी।

आगे चलकर हम देखेंगे कि अण्णासाहब को फैयाजखांसाहब ने अपने रस्मोरिवाज के मुताबिक गंडाबंध शागिर्द होने पर ही उन्हें तालीम देना स्वीकार किया। यह बात भी अण्णासाहब के लिए बहुत दूर तक उपयोगी सिद्ध हुई। इस गंडाबंधन का एक विशेष लाभ यह हुआ कि अण्णासाहब को उस्ताद फैयाजखां के गंडाबंध शागिर्द के नाते उस जमाने के गवैयों की खास खास मंडली में मुक्त प्रवेश मिलता रहा; उनको सब दिशाओं से मान्यता प्राप्त होती गई। और पं. भातखंडेजी की भावी योजनाओं की दृष्टि से भी यह घटना उपयुक्त रही। इसके बारे में अण्णासाहब से मैं स्वयं सुन चुका हूं। पंडितजी अपनी प्राप्त की हुई गानविद्या और उसके शास्त्र को गानसाधकों के माध्यम से विशेषत: उत्तर भारत में प्रसारित करने हेतु किसी माध्यम की

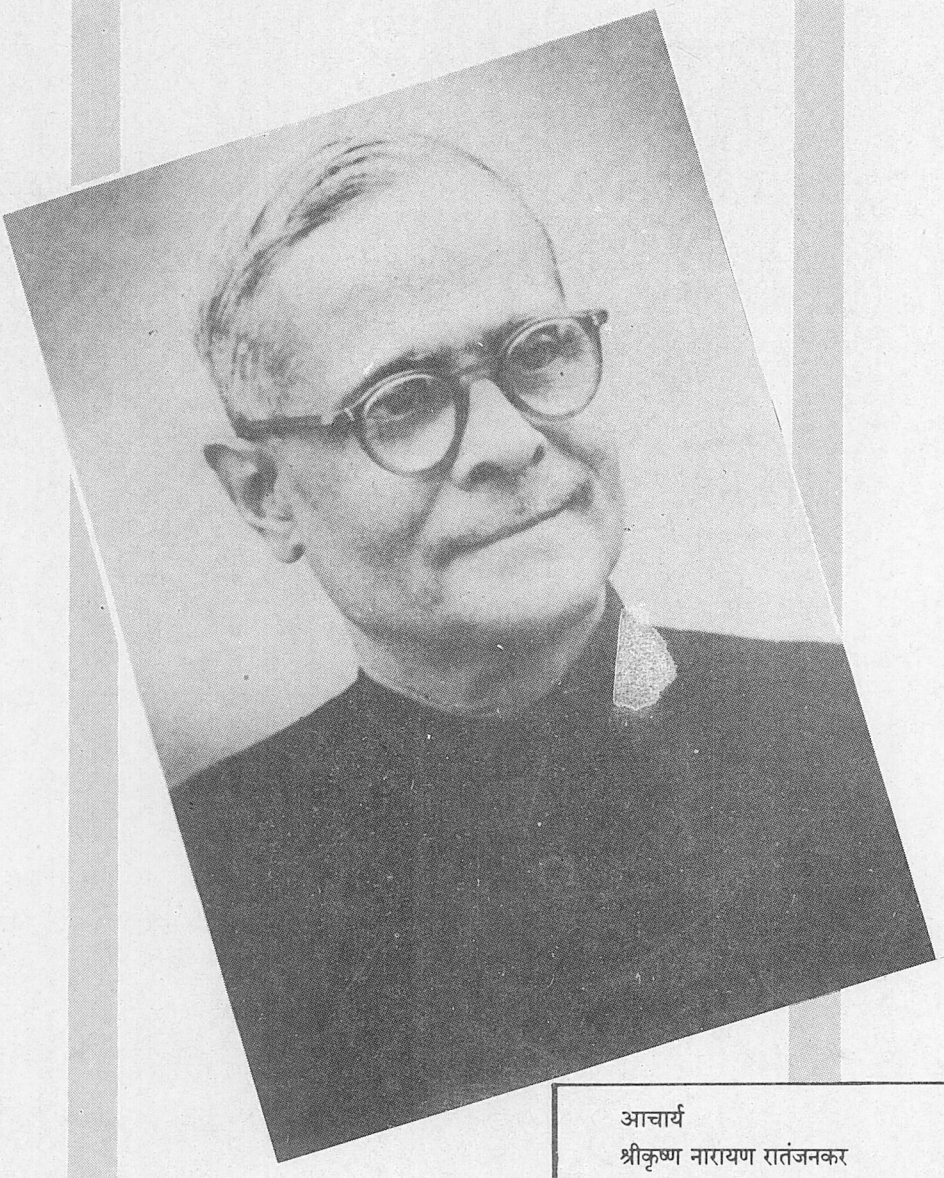

आचार्य
श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर
३१.१२.१९०० - १४.२.१९७४

मातृपितृदेवता

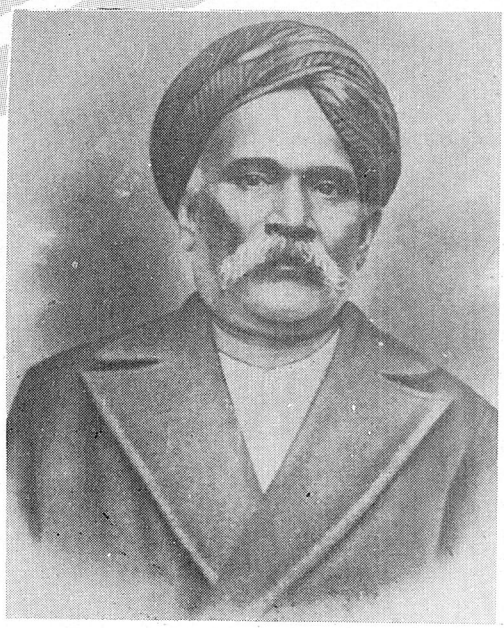

स्व. श्री. नारायणराव रातंजनकर

स्व. श्रीमती लक्ष्मीबाई रातंजनकर

"चरन कमल बन्दौं गुरुराई"
पंडीत अनंत मनोहर जोशी

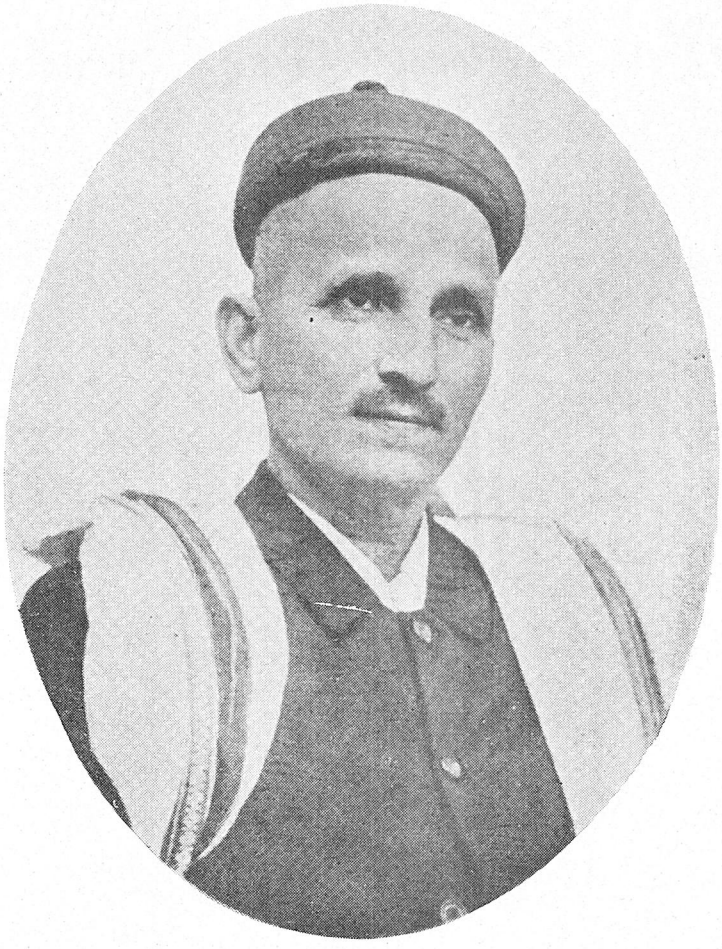

**परमश्रद्धेय गुरुदेव**

पं. विष्णु नारायण भातखंडे (१९३३ में)

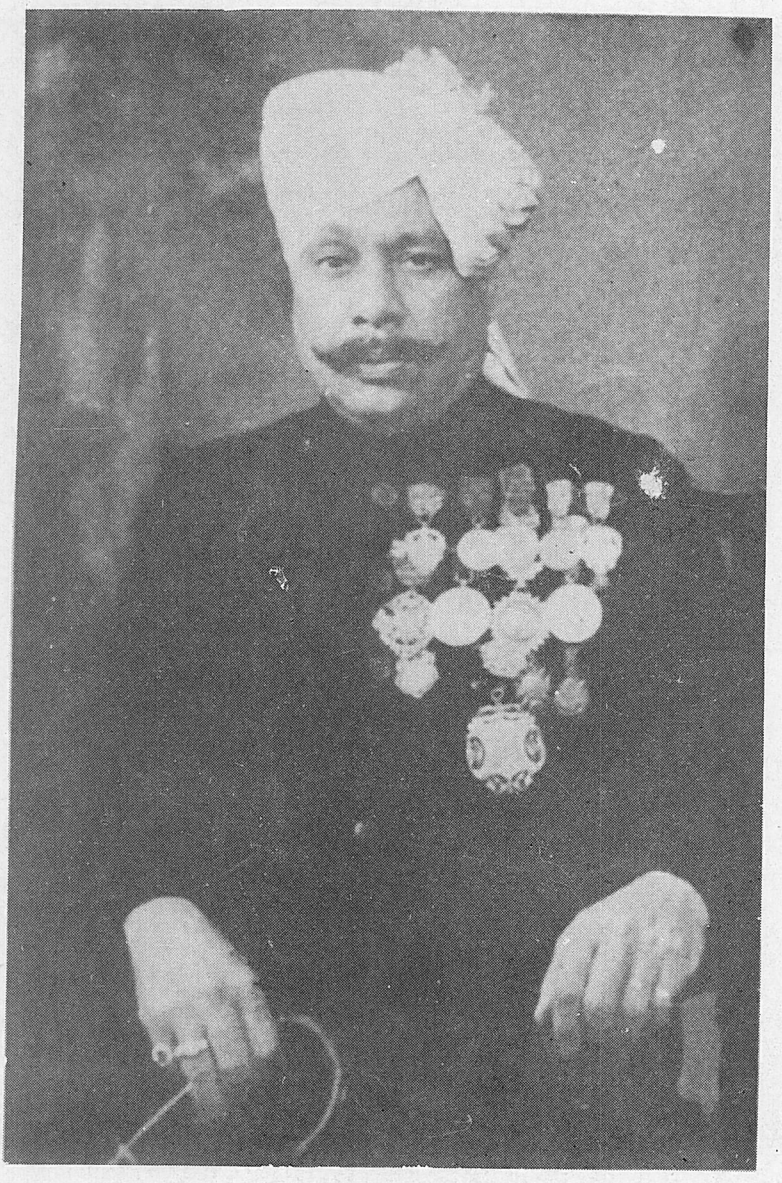

गुरवे नमः ।

आफताब-ए-मौसिकी फैयाजखांसाहब

रातंजनकरजी के उस्ताद

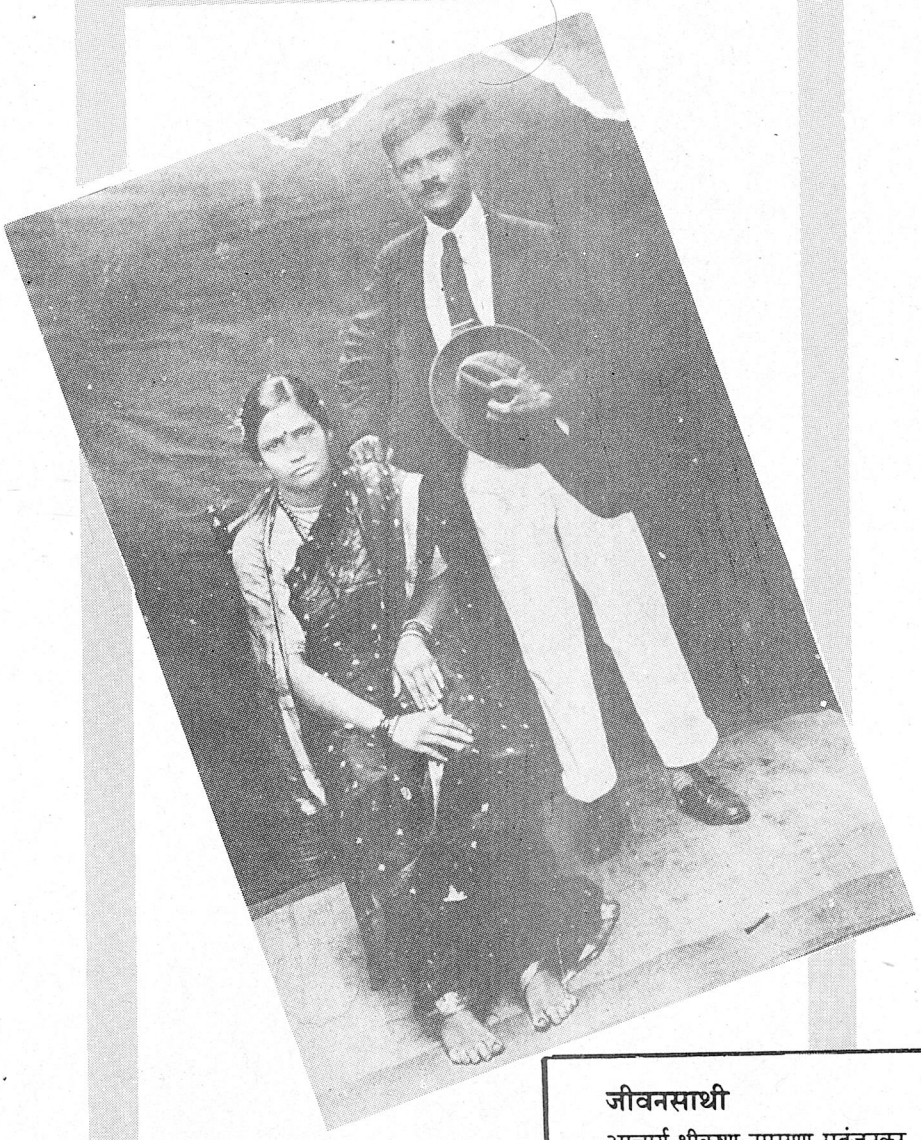

**जीवनसाथी**

आचार्य श्रीकृष्ण नारायण रातंजनकर
श्रीमती इंदिराबाई श्रीकृष्ण रातंजनकर

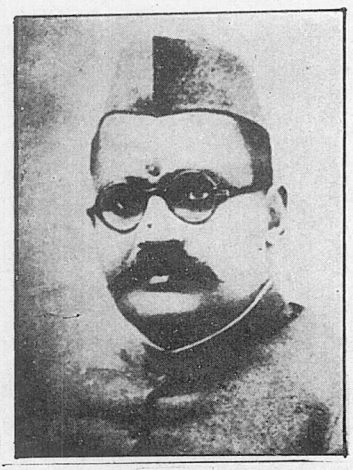

*Rai Umanath Bali (1892-1966)*

*Dr. Raj Rajeswar Bali (1889-1944)*

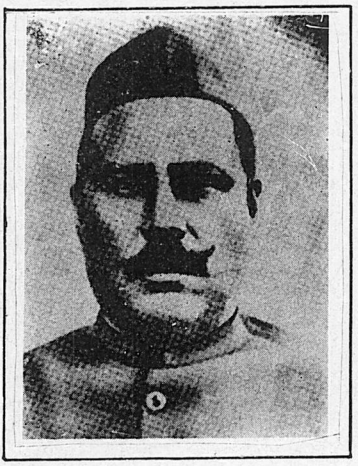

*Raja Nawab Ali Khan of Akbarpur*

*A rare group-photo taken in December 1926 on the occasion of the formal Opening Ceremony of the Music College. In this photo may be seen Pdt. Bhatkhande, Sir William Marris (the then Governor of Avadh), Rai Rajeshwar Bali, and many other cultured Rajahs, Nawabs, and Taluqdars. Started in July as "The Akhila Bharatiya Sangeet Mahavidyalaya", it was named The Marris Music College in December 26, and later on, it was rechristemed as "The Bhatkhande Sangeet Mahavidyalaya" on 28/2/1927.*

*Seated : Bhatkhandeji; Umanath Bali,*
*(Standing) Shankarrao Karmad; Brij Kishan Kaul.*

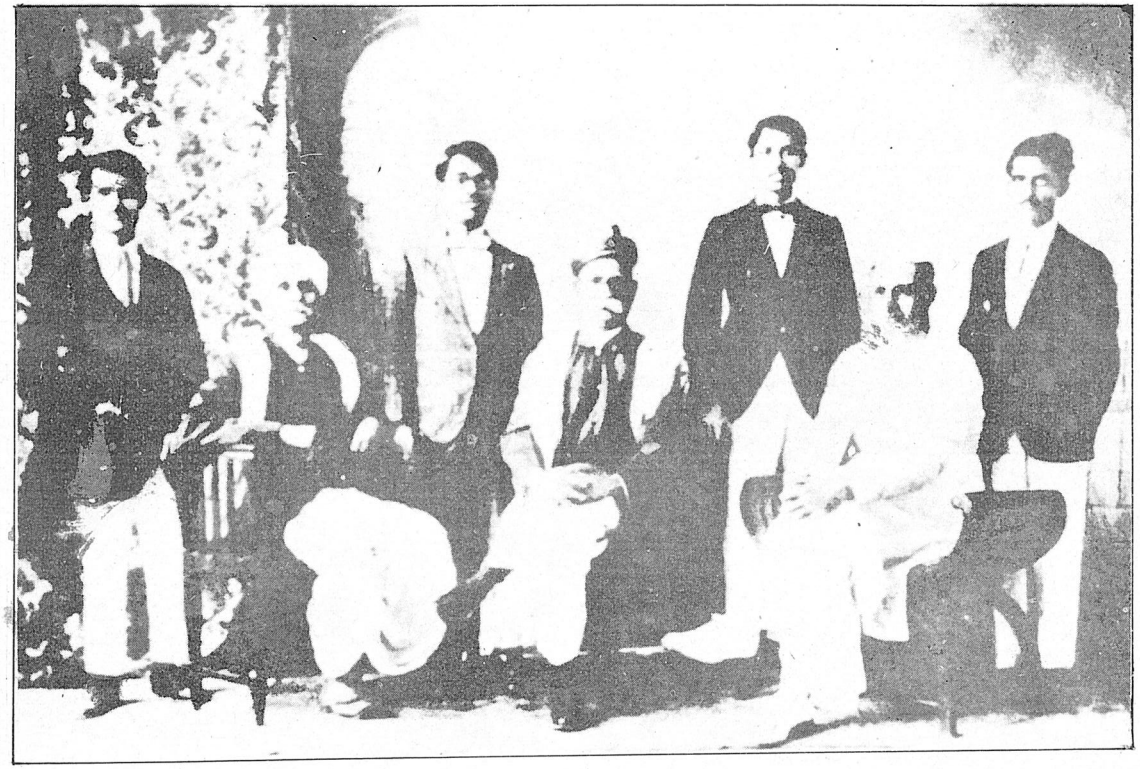

*Standing : L to R - G.N. Ratanjankar, G.N. Natu; L.D. Joshi; S.N. Ratanjankar.*
*Seated : L to R - Dr. H.N. Hukku; Madhavrao Keshav Joshi; (the first Principal of the college) and his elder brother D.K. Joshi*

मैरिस म्यूजिक कॉलेज १९३२ में

**अध्यापकों तथा छात्रों समवेत** (बीच में) पं. रातंजनकर के पार्श्व में पं. भातखंडे (शेष, बैठे हुए, बाएं से) प्रा. भाके, पहाड़ी संन्याल, सखारामजी. बी. एस. पाठक, जी. एन. नातू, पं. रातंजनकर, पं. भातखंडे, बड़े आगा, उ. सखावत हुसेन, उ. हमीद हुसेन, रवीन्द्रलाल रॉय इ.

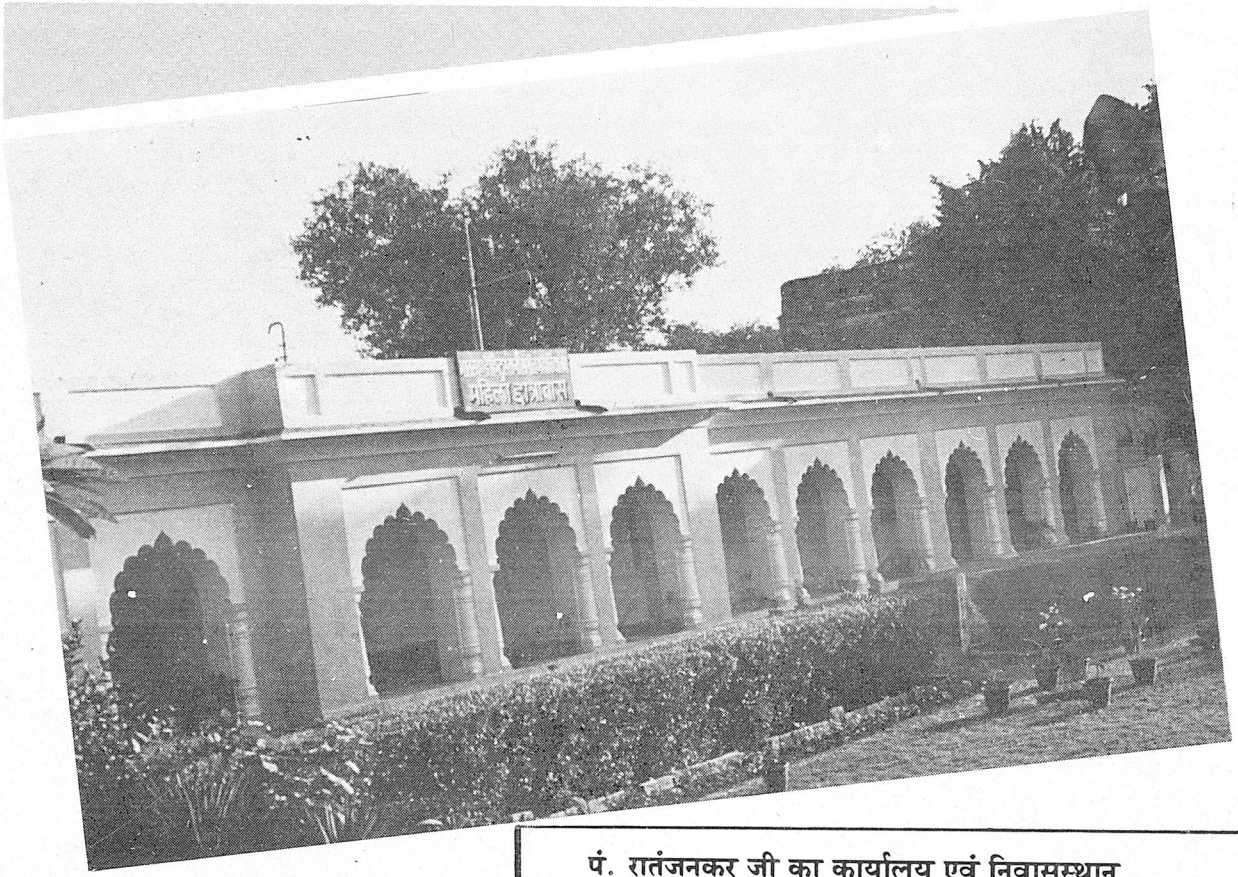

**पं. रातंजनकर जी का कार्यालय एवं निवासस्थान**

मैरिस म्यूजिक कॉलेज, महिला छात्रालय दाहिने हाथ के अंतिम कक्ष में कार्यालय तथा उसके पीछेवाले कक्ष में निवास

**मैरिस म्यूजिक कॉलेज, लखनौ, १९३३ के कुछ वरिष्ठ छात्र**

(खड़े) जी.पी. कपूर, एस्. कांजीलाल, डी.पी, चौधरी (कुर्सी), पं. रातंजनकर, पं. भातखंड़े, ए. मुजुमदार

(बैठे हुए) एस्. रॉय, एस्. अमरसिंह

**संगीत-परिवार की एक छवि : लखनऊ (१९३२)**

कुर्सियों पर : बाएं से दाएं

(१) सर्वश्री के. जी. मजूमदार (२) दादासाहब रातंजनकर (३) श्रीकृष्ण रातंजनकर (४) राजाभैय्या पूछवाले (५) (नाम विस्मृत) (६) गोविंदराव नातू (७) बालाजी पाठक

खड़े : (१) (नाम विस्मृत) (२) चंद्रशेखर पंत (३) नोनी गोपाल बेनर्जी (४) गोपाल नातू (५) बालासाहब पूछवाले (६) व्ही. जे. जोशी

अण्णासाहब १९३१-३२ में

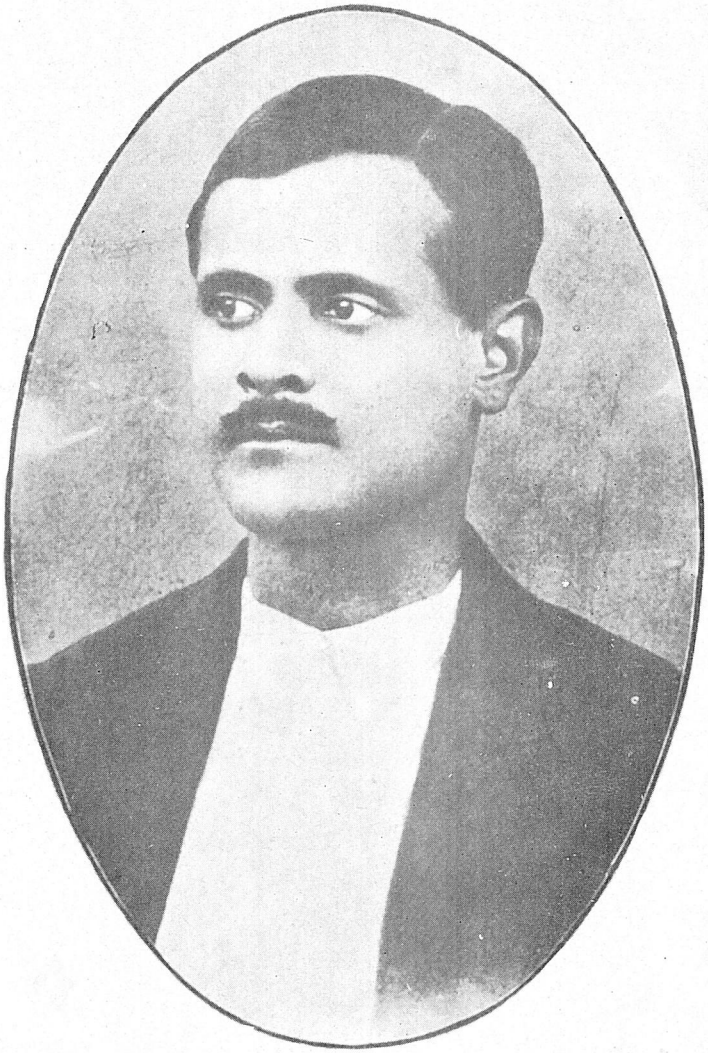

*Dr. S. N. Ratanjankar — Great Exponent of Music*
*in his mid thirties*

जरूरत महसूस कर रहे थे। अपने शिष्य 'श्रीकृष्ण' को वे इस माध्यम के रूप में विकसित करना चाहते थे। ऐसा शिष्य जो महफिलों में भातखंडेजी की प्रतिग्राह्य गायन-प्रणाली का अनुसरण कर सके। इसी पहलू के साथ जैसा कि विधाताने चाहा था, अण्णासाहब के नेतृत्व में मैरिस कॉलेज, लखनऊ के जरिए भातखंडे प्रणाली का प्रशिक्षण और प्रचार उनकी आँखों के सामने ही होने लगा और इस प्रकार पंडितजी की महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति हो सकी।

## सुंदर स्वार्थ

पंडितजी की एक और आकांक्षा की भी परिपूर्ति इस योजना की बदौलत हो गई, जिसे मैं 'आदर्श सुंदर स्वार्थ' कहना चाहूंगा। उनके मन में बराबर यह कसक थी कि उनका कोई शिष्य अबतक महाफिली गवैये के रूप में नहीं उभरा था। उनके एक मेधावी शिष्य वाड़ीलालजी ने अपने व्यक्तित्व को गानविद्यापंडित के रूप में ही विकसित किया। शंकरराव कर्नाड़ तो पेशे से वकील थे। मैंने इन सबको गानविद्या तो विपुल मात्रा में प्रदान की है, किंतु जबतक मैं उन्हें महफिल के माहौल से और उसकी प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं दिला सकता तबतक उनकी साधना एक तरह से अधूरी ही रहेगी। अण्णासाहब ने पंडितजी की जो जीवनी लिखी है उसमें उनका एक विचार प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं- ''संगीत के प्रसार के लिए शास्त्र की आवश्यकता को वे निश्चय ही महत्वपूर्ण मानते थे, किंतु उसके साथ ही प्रत्यक्ष गाने-बजाने को भी वे बराबर उतना ही महत्त्व देते थे। उनकी यह धारणा थी कि जिसे महफिलों में अपना प्रभाव पैदा करना है उसे गायन-वादन के श्रेष्ठ महफिली कलाकारों से तालीम प्राप्त करनी चाहिए।'' मतलब यह कि जबतक संगीत-साधक किसी उम्मीदवार की तरह महफिलों के माहौल से नहीं गुजरता तबतक वह 'गवैया' नहीं बन सकता। पंडितजी यह भी जानते थे कि ऐसे महफिली गायक के पास उसे तालीम तो ज्यादा नहीं मिल सकेगी, किंतु उसके निकट सान्निध्य में रहने मात्र से वह बहुत कुछ जान-समझ सकेगा। उस्ताद किस तरह से अपना गाना पेश करते हैं, उसके तौर-तरीके क्या हैं इसके बारे में उसे अपने आप 'ट्रेनिंग' मिलता जाएगा। तो यह उद्देश्य मन में रखकर पंडितजी ने उस्ताद फैयाजहुसेनखांसाहब के हाथ अपने प्रिय शिष्य को सौंप दिया। याने सोचने की पंडितजी को इस बात का कोई रंज नहीं था कि भविष्य में लोग अण्णासाहब को ज्यादातर फैयाजखां के शागिर्द के रूप में ही पहचानेंगे, उनके गुरुओं में पंडितजी का नाम दूसरे सोपान पर होगा। उनका लक्ष्य एक ही था भारत की भावी संगीत-परंपरा में शास्त्र एवं कला दोनों का ठीक ठीक मेल साधनेवाली गायन-वादन प्रणाली प्रसारित होती रहे। इसीलिए मैंने इसे 'आदर्श सुंदर स्वार्थ' कहा।

## गंडाबंधन

तो बात चल रही थी महाराजा के द्वारा अण्णासाहब को विद्यावेतन प्राप्त होने की। यह सब समाचार अण्णासाहब से नारायणरावजी को ज्ञात हुआ तब उन्हें कितनी प्रसन्नता हुई होगी और पंडितजी के प्रति कृतज्ञता के भाव उनके मन में कैसे उमड़े होंगे, इसका अनुमान हम कर सकते हैं। परिषद के दौरान खांसाहब की महफिल सजना स्वाभाविक ही था, जिसका उल्लेख मैं कर चुका हूं। महफिल की समाप्ति पर श्री नारायणराव अण्णासाहब को लेकर खांसाहब से मंच पर मिले। अण्णासाहब ने उन्हें आदरपूर्वक प्रणाम किया। खांसाहब के भव्य व्यक्तित्व

से वे अत्यंत प्रभावित हुए। नारायणरावजी ने खांसाहब को अपने बेटे के बारे में बताया कि आजकल पं. भातखंडेजी के पास सीखता है और अब सरकार से वजीफा मिलने की वजह से बड़ौदा में ही रहनेवाला है। तबतक खांसाहब से महाराजा की बात वगैरह सब हो चुका था। उस्ताद ने कहा-

"अच्छा ये ही हैं, जो मेरे पास आनेवाले हैं? मुझे भी सरकार की ओर से हुक्म मिला है इनकी बाबत। ठीक है, आते रहो।"

यह सब हो जाने पर भी खांसाहब की तालीम तुरंत शुरू हो जाना संभव नहीं था। बड़ौदा सरकार से लिखित रूप में आदेश मिलना आवश्यक था और संपूर्ण परिवार के स्थलांतर की व्यवस्था अण्णासाहब के स्कूल का प्रमाणपत्र आदि बहुत-सी बातों की पूर्ति हो जाना भी जरूरी था। श्री नारायणराव और अण्णासाहब अहमदनगर लौटे। वहां से यह परिवार कुछ दिनों के लिए सातारा को स्थलांतरित हो गया। फिर उसके बाद ये लोग वहां से पुनश्च पुणे में रहने आ गए और वहां पर जुलाई १९१७ के अंत तक रहे। अब आगे की दिशा तय हो चुकी थी। बड़ौदा से 'ऑर्डर' पहुंचते ही सभी परिवार वहां रवाना होनेवाला था। श्री नारायणराव की पेन्शन और अण्णासाहेब के विद्यावेतन पर घर का खर्च आराम से चलनेवाला था। योजना के अनुसार रियासत से हुक्म आ पहुंचा और अगस्त १९१७ में परिवार ने बड़ौदा को प्रस्थान कर दिया। वहां पहुंचने पर रीति के अनुसार अण्णासाहब ने उस्ताद फैयाजखां के दर्शन किए और कहा- "खांसाहब, मैं श्रीकृष्ण रातंजनकर। आपकी सेवा में हाजिर हो गया हूं।"

खांसाहब ने प्यार से अण्णासाहब को पास में बिठाया और कहा-

"देखो बेटा, यह तो ठीक है कि तुम पंडितजी के पास से आए हो। किंतु पहले तुम हमारा गंडा बांधोगे; उसके बाद हम तुम्हें तालीम देना शुरू करेंगे। बात यह है कि तुम हमारा गंडा बांध लोगे तो हमारे बेटे के समान याने हमारी बिरादरी का बन जाओगे। याने हमारे घर का एक आदमी बन जाओगे। हम लोग कितने भी बड़े हों गंडाबंध शागिर्द को हम अपने बेटे के समान मानते हैं।"

इतनी बात हो जाने के बाद यथासमय निमंत्रित गायक-वादकों की उपस्थिति में रीतिरस्म के अनुसार खांसाहब के घर पर ही गंडाबंधन समारोह संपन्न हुआ। खांसाहब ने दो आने का चना गुड़ मंगवाया और कुछ मंत्र बोलकर गुड़ और चने के दाने 'श्रीकृष्णा' के मुख में डाल दिए और 'सा री ग म' का सबक सिखाकर तालीम का श्रीगणेश कर दिया। फिर चाय-पानी के साथ यह घोषित किया गया कि आज से लेकर श्रीकृष्ण रातंजनकर खांसाहब का शागिर्द हो गया। इस गंडाबंधन में कोई डीमडौल नहीं था। सब संस्कार केवल ४ रूपये में संपन्न हो गया।

यहां यह उल्लेखनीय है कि भातखंडेजी के साथ फैयाजखांसाहब के संबंध अत्यंत स्नेहपूर्ण रहे। श्रीमती दीपाली नाग ने फैयाजखांसाहब के जीवनपरक एक पुस्तक अंग्रेजी में लिखी है। उसके आखरी पृष्ठों में वह लिखती हैं कि उस्ताद फैयाजखां कहा करते थे कि Whatever I am to-day is because of Bhatkhande.' जब जब पंडित जी बड़ौदा जाते थे तब खांसाहब से अवश्य मिलते थे। अब मैं अण्णासाहब का शिष्य हूं तो खांसाहब तो मेरे लिए दादागुरु ही हैं। मैं आपको बताना चाहूंगा कि आदर्श गायन के जो नियम भातखंडेजी ने पुनर्स्थापित किए हैं उनके हू-ब-हू दर्शन यदि किसीके गायन में मिलते हों तो फैयाजखांसाहब के गायन

में मिलते हैं।

उस्ताद फैयाजखां तो उस जमाने के अत्यंत लोकप्रिय और ख्यातिप्राप्त गायक थे। इसलिए तालीम के लिए कोई खास तय किया हुआ वक्त तो नहीं मिल सकता था। लेकिन जब जब अवसर मिलता और जब कभी खांसाहब 'मूड़' में आते तब दो-दो तीन-तीन घंटे तालीम का सिलसिला चलता रहता। परंतु एक नियम का पालन अण्णासाहब को कड़ाई से करना पड़ता था। रियासत के नियमानुसार प्रतिदिन संध्या को हाजिरी देना अनिवार्य था। हर दिन की हाजिरी पर खांसाहब के दस्तखत होना आवश्यक था। इस शर्त की पूर्ति पर ही विद्यावेतन मिलने की बात तय हुई थी। महाराजजी के सारे कारोबार का यही पैमाना था। उसमें न शिष्य को ढील का अवसर था न गुरु को। फिर भी उसमें कानूनी कठोरता की गंध भी नहीं थी। समझने की बात थी। तो इस नियम के मुताबिक अण्णासाहब रोज गुरु की सेवा में उपस्थित हो जाते थे। लेकिन हर समय गुरू के दर्शन हो ही पाते थे, सो नहीं। कभी कभी पूरा दिन खाली जाता और रातको दस बजे खांसाहब घर पहुंच जाते। तबतक अण्णासाहब अपना स्कूल समाप्त करके उनकी प्रतीक्षा में बैठे रहते। फिर उस दिन सिखाने का मन न हो तो वे कहते, "श्रीकृष्णा, अब बहुत वक्त हो गया, अब तुम मेरा दस्तखत लेके जाओ।" सारांश यह कि नियमित रूप से तालीम नहीं हो जाती थी किंतु जब होती तब काफी गहरी तालीम होती। खांसाहब ने अण्णासाहब को बहुत-सी बंदिशें सिखाईं, राग प्रस्तुतीकरण की पद्धति के बारे में भी अनुभव की बातें बताईं और होते होते और खास तौर पर गुरु की सन्निधि के कारण अण्णासाहब का व्यक्तित्व अपने आप विकसित होता गया। और यह क्रम पांच वर्ष तक चला।

इधर पं. भातखंडेजी तो अपने शिष्य के विद्याग्रहण पर पूरी दृष्टि लगाए हुए थे। दो-एक महीनों में उनका बड़ौदा आना होता ही रहता, क्योंकि महारानी चिमणाबाई को गायन सिखाने के लिए उन्हें बीच बीच में आना ही पड़ता था। उस समय अपने 'बाबू' से वे सब कुछ पूछते और आवश्यकतानुसार कुछ उपयुक्त सुझाव भी देते। उदाहरण के लिए अण्णासाहब की आवाज ऊंची थी और खांसाहब की ढली। इसलिए उन्हें भी ढले स्वर में मेहनत करनी पड़ती। पंडितजी ने उन्हें बताया कि स्वतंत्र रूप में गाते समय तुम अपना स्वर ऊंचा ही रखो। तुम्हारी आवाज की जो जाति है, उसका जो 'टिंबर' है, वह ऊंचे स्वर का है। खांसाहब की गायकी तुम अवश्य ले लो, किंतु उनकी आवाज में मत गाओ। उनका यह मंतव्य कितना महत्त्वपूर्ण था! अण्णासाहब ने हम शिष्यों को भी उचित समय पर योग्य संकेत देकर हमारा मार्ग प्रशस्त कर दिया है। और हम लोग भी अपने शिष्यों का इसी प्रकार मार्गदर्शन किया करते हैं। गाने की शैली आप कोई भी अपनाइए किंतु उसे अपने व्यक्तित्व के अनुसार ढालना आपका काम है। इसे न भूलिए कि आपको उस शैली के आगे बढ़ना है; उसमें 'खुद' को प्रस्थापित करना है।

### बड़ौदा के अन्य साधक

अण्णासाहब के साथ उन दिनों एक और युवा साधक रियासत की सहायता पर बड़ौदा आए थे, जिनकी आज तमाम संगीत-जगत् में सहसवां घराने के सब से बुजुर्ग उस्ताद के रूप में मान्यता है - निसार हुसेन खांसाहब। संप्रति कलकत्ते की संगीत रिसर्च अकैडमी में आप उस्ताद हैं, तराने के मशहूर अदाकार। अण्णासाहब हमेशा उनका जिक्र करते थे और कहते

थे कि उस युवा वयस में भी वे बहुत अच्छा गाते थे। आप बड़ौदा में १९१७ में ही कुछ महीने पहले उपस्थित हुए थे। किंतु उनकी तालीम उ. फैयाजहुसेन खां के पास नहीं थी। बड़ौदा दरबार में उनके ही वालिद खांसाहब फिदाहुसैन (रामपुर) भी शाही गायक थे। स्वाभाविक रूप से उन्हींके मार्गदर्शन में निसार हुसेन जी की तालीम जारी रही। इस सिलसिले में यह बताना जरूरी है कि फैयाजखांसाहब ने सीधे बहुत ही कम साधकों को सिखाया। हमारे अण्णासाहब ऐसे भाग्यवान साधक रहे जिन्हें खुद फैयाजखांसाहब की तालीम मिली। औरों के बारे में आप कहा करते कि आप मेरे साथ रहिए, मेरा गाना सुनिए और अपना गाना बनाइए। ऐसे जो सज्जन उस काल बड़ौदा आए थे, उनमें दिल्ली के दिलीपचंद्र वेदी प्रमुख थे, यद्यपि वे अधिक काल वहां नहीं रहे। आज के वयोवृद्ध संगीत-साधकों में उनका नाम आदरपूर्वक लिया जाता रहा। (हाल ही में उनका स्वर्गवास हुआ) आप पहले आग्रा घराने के नत्थनखांसाहब के शिष्य विख्यात गायक पं. भास्करबुवा बखले के पास सीखते थे। किंतु १९२० में उनका देहांत हो जाने के बाद उसी घराने के उस्ताद के नाते आप उ. फैयाजहुसैन जी की सेवा में हाजिर हो गए। उस समय बड़ौदा में अता हुसैन खां खांसाहब आके रहे थे। ये अत्रोली के दरसपिया महबूबखां के बेटे थे और फैयाजखांसाहब ने दूसरी शादी महबूबखां की बेटी से की थी। फैयाजखां के और शागिर्दों की तालीम इन अताहुसैनखां के पास चलती थी। खांसाहब ट्यूशन वगैरह तो करते नहीं थे। अत: तालीम अता हुसेन खां की होती थी और आदर्श फैयाजखांसाहब का होता था। हां, गंडाबंध शागिर्द को उसकी बुद्धि के अनुसार कहां तक ले जाना है यह गुरु का दायित्व है। उसमें पाठ्यक्रम नहीं रहता है। फैयाजखांसाहब का रवैया ऐसा ही था।

खांसाहब से मार्गदर्शन पाने के लिए आए हुए साधकों में स्वामी श्रीवल्लभदास का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जीवन के उत्तरार्ध में स्वामी जी के साथ अण्णासाहब का बहुत घनिष्ठ संबंध स्थापित हुआ था। स्वामीजी कृष्णभक्त थे और संगीतानुरागी थे। आप उ. फैयाजखां से ही तालीम पाने के इच्छुक थे; किंतु खांसाहब ने उन्हें सलाह दी कि आप अता हुसेन से तालीम लीजिए। नायकी उनसे सीखिए और मेरी सभी महफिलों मे उपस्थित रहकर मेरी गायकी के संस्कार ग्रहण कीजिए। आगे श्रीवल्लभ संगीत विद्यालय के सिलसिले में हम इन स्वामीजी के संबंध में अधिक बयान करें।

### बड़ौदा से अन्य लाभ

अपनी संगीत-साधना के दौरान अण्णासाहब की स्कूली शिक्षा भी चल ही रही थी। विद्यालय में पढ़ने के दौरान उन्हें संगीत का एक और कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ। उस समय रियासत के संगीत विद्यालय के प्रिंसिपल रूसी संगीतकार श्रीमान एम्. फ्रेडलिस थे, जो पं. भातखंडेजी से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने देखा कि यह नया लड़का उन्हींकी सिफारिश से रियासत आया है और संगीत में अच्छी रुचि रखता है, तो उन्होंने चाहा कि इसे संगीत का ही कोई और काम सौंपा जाए। उन्होंने अण्णासाहब को रियासत की सेवा में कार्यरत उस्तादोंद्वारा गाई जानेवाली बंदिशों को एक जगह लिखने और उनकी स्वरलिपि बनाने का काम दे दिया। इन उस्तादों में अण्णासाहब को सबसे अधिक सहायता मिली विद्यालय के वाद्यवृंद के जलतरंग-वादक उस्ताद अमीरखां गुलाबसागर से। उनकी कई बंदिशों की अण्णासाहब ने स्वरलिपि बनाई। उन्हें फिर पाठ्यपुस्तकों में स्थान दिया गया। सागरसाहब से पं. भातखंडेजी ने भी कई बंदिशें ली

थीं और बाद में उनके नामनिर्देश के साथ अपनी पुस्तकों में उन्हें समाविष्ट किया था। यहां ध्यान देने की एक और बात है कि १८-१९ की उम्र में ही अण्णासाहब को पं. भातखंडेजी ने बंदिशों की स्वरलिपि बनाने के सूक्ष्म कार्य में प्रवीण कर दिया था।

बड़ौदा में अण्णासाहब को महफिली गायन का, अलग अलग बंदिशों को सीखने का तथा अपने उस्ताद से मिलनेवाली तालीम का विपुल लाभ प्राप्त हुआ। खांसाहब के साथ तंबूरे पर संगत करने के भी अनेक अवसर उन्हें मिलते रहे। हम अण्णासाहब की गायकी के संबंध में आगे विस्तार से बात करनेवाले हैं किंतु यहां यह बता देना जरूरी है कि उनकी गायकी में फैयाजखांसाहब की गायकी का प्रभुत्व अधिक रहा। किंतु इसके मायने यह नहीं कि आगे उनकी गायकी का कुल मिलाकर जो रूप सिद्ध हुआ वह आग्रा घराने का ही था। लेकिन ऐसे जबरदस्त उस्ताद की संगति में ५ साल तक रहने का असर होना स्वाभाविक ही था। इतना ही नहीं तो खांसाहब खुद कहते थे कि उस काल में श्रीकृष्णा मेरी 'फोटो कॉपी' था। फैयाजखांसाहब ने खुद मुझसे भी यह बात कही है। और यही बात, जब हमारे गुरुवर १९२३ में बड़ौदा से बम्बई आए तब बम्बई के प्रार्थना समाज के प्रवर्तक सर नारायण चंदावरकर के सुपुत्र श्री प्रभाकर ने भी (जो कस्टम कलेक्टर होके रिटायर हुए थे) हमसे कही थी कि "हमने उस वक्त उनका गाना सुना था और उसमें हमें खांसाहब के गानेकी शकल बखूबी महसूस होती थी।" फिर यही बात मेरे गुरुबंधु दिनकर कायकिणी के श्वशुर डॉ. समसी और उसी परिवार के श्री प्रभाकरराव शिरूर (श्री चंदावरकर के बहनोई) ने भी कही। वह तो कहते थे कि हमने उन दिनों अनुभव किया है कि यदि अण्णासाहब परदे के पीछे बैठकर गाते तो लगता था कि फैयाजखां ही गा रहे हैं। वे लोग हम शिष्यों को बताया करते कि आपने उनका क्या गाना सुना होगा। हमने उसका सच्चा आनंद लूटा है!

बड़ौदा रहने के दौरान अण्णासाहब की विद्यालय तथा महाविद्यालय की शिक्षा भी यथावत् होती रही। अपने बड़ौदा निवास में उन्होंने १९१९ में मॅट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। उसके बाद वे बड़ौदा कॉलेज में दाखिल हो गए। वहां बी. ए. प्रीव्हियस उत्तीर्ण करके वहींपर वे 'इंटर आर्टस्' की कक्षा में पढ़ने लगे। किंतु बड़ौदा में वे इंटर की परीक्षा पूरी नहीं कर पाए। परीक्षा केंद्र अहमदाबाद में था। पिताजी के साथ वे अहमदाबाद गए; किंतु पंडाल में ही अचानक उन्हें भयानक बुखार चढ़ आया और उन्हें बड़ौदा लौटना पड़ा। बाद में पता चला कि वह चेचक का आकस्मिक दौरा था!

१९२२ में बड़ौदा से बंबई आ जाने पर अण्णासाहब ने १९२४ में इंटर की परीक्षा पूरी कर ली और आगे १९२६ में विल्सन कॉलेज, बंबई से आप बी. ए. हो गए।

बड़ौदा के साहित्य एवं कलाप्रेमी सांस्कृतिक वातावरण से भी अण्णासाहब ने पर्याप्त लाभ उठाया होगा। मराठी के विख्यात परिहास-लेखक श्रीमान चिं. वि. जोशी वहां के कॉलेज में प्राध्यापक थे। प्रोफेसर रामचंद्र आठवले (संगीत के विद्यमान पंडित श्री वि. रा. आठवले के पिता) जैसे रसिकोत्तम विद्वान और गायक कीर्तनकार वहां संस्कृत पढ़ाते थे। और भी अनेक विद्वानों का 'अखाड़ा' बड़ौदा के परिवेश में जमा हुआ था, जिसका श्रेय गुणग्राही समर्थ नरेश सयाजीराव गायकवाड़जी को देना होगा। अनेक चुने चुने आदमियों को उन्होंने इकट्ठा किया था। इससे अण्णासाहब की साहित्य के प्रति भी पर्याप्त रुचि बढ़ी। वहां अण्णासाहब ने अन्य भाषाएं भी सीखीं। गुजराती काफी अच्छी लिख बोल लेते थे। उस माहौल में रहकर कोई

गुजराती से वंचित भी कैसे रह पाता? इसके साथ संस्कृत के प्रति उन्हें अतीव अनुराग था, सो उस भाषा में प्रवीणता पाने की दिशा में वे प्रयत्नशील रहे।

यह तो बताया ही गया है कि अण्णासाहब के पिताजी संस्कृत के व्युत्पन्न विद्वान और अंग्रेजी साहित्य के प्रेमी थे। अण्णासाहब को भी स्वाभाविक रूप से यह भाषा-साहित्य-प्रेम विरासत में ही मिला। कालिदास के सब नाटक और काव्य पिताजी ने उन्हें घर पर ही सिखाए थे। शेक्सपियर के कई 'ड्रामा' उनको याद थे। मैं जब लखनऊ उनके पास रहते हुए स्कूल की पढ़ाई कर रहा था तब 'ऑथेल्लो' नाटक अण्णासाहब ने ही मुझे पढ़ाया था। 'मर्चंट ऑफ वेनिस' नाटक तो उन्हें मुखगत था। महाभारत, रामायण, बायबल आदि का भी पठन वे करते रहते थे। इस प्रकार वे संगीत-साधना के साथ साथ अपने साहित्य पक्ष को भरसक बढ़ाते रहे। इस प्रकार आप देखेंगे कि पं. भातखंडे अपने इस खास शिष्य को जिस विशिष्ट रूप में विकसित करना चाहते थे, ढालना चाहते थे उसीके मुताबिक उसका प्रत्येक चरण बढ़ता गया। पंडितजी की यही आकांक्षा थी कि मेरा यह शिष्य एक साथ कीर्तिवान् महफिली गायक और सुविद्यासंपन्न भी बने। पंडितजी के संगीतविषयक कार्य का मेरुदण्ड भी यही था। उनका बराबर यही आग्रह रहा कि यह अनमोल विद्या सुविद्य साधकों के हाथ में जाए, तभी उसका सही दिशा में विकास हो पाएगा।

### पुनश्च बंबई

अण्णासाहब अपने पिताजी वगैरह के साथ बड़ौदा छोड़कर १९२२ के उत्तरार्ध में बंबई आ गए। ये लोग तब बोरिवली (बंबई) में ठहरे हुए थे। यहां आने पर पंडितजी के पास पुनश्च संगीत साधना का सिलसिला जारी रहा।

किंतु इसी बीच अण्णासाहब को पुणे शहर के महिला विश्वविद्यालय के तत्त्वावधान में स्थित अहमदाबाद के महिला विद्यालय में संगीत-अध्यापक की नौकरी मिल गई। वे अपने पिताजी के साथ वहां जाकर रहने लगे। विद्यालय की नौकरी का समय शाम का था। इसका लाभ उठाकर अण्णासाहब ने अहमदाबाद के गुजरात कॉलेज में 'बी. ए. आर्टस्' के लिए अपना नाम दर्ज कर दिया। विद्यालय की नौकरी के बाद चार घंटे तक उनका संगीत का रियाज भी चलता था। इतना ही नहीं तो अहमदाबाद में उन्होंने कई कार्यक्रमों मे अपना गायन भी प्रस्तुत किया और अपने गायन से श्रोताओं को काफी प्रभावित किया।

इसी दौरान एक और सुनहरा अवसर अण्णासाहब के जीवन में आया। १९२४ में ही चौथी अखिल भारतीय संगीत परिषद का आयोजन लखनऊ में संपन्न हुआ। उस समय अंण्णासाहब अहमदाबाद में ही थे। वे इस परिषद में सोत्साह सम्मिलित हुए। परिषद की संगीत-सभा में उनका गायन भी हुआ। श्रोताओं को उन्होंने संतुष्ट कर दिया। इस बारे में वे खुद अपनी अंग्रेजी में लिखी संक्षिप्त आत्मकथा में लिखते हैं - "मेरे दोनों गुरु, पं. भातखंडे और उस्ताद फैयाजखां वहां उपस्थित थे। मैं यह देख रहा था कि उन दोनों को मेरी प्रस्तुति संतोषजनक प्रतीत हो रही थी। उन्होंने बाद में मुझे शाबाशी देकर मेरे उत्साह को बढ़ाया।"

इसके पूर्व १९२३ में बंबई में पं. भातखंडेजी के सान्निध्य में संगीत-साधना जारी रखते हुए अण्णासाहब को संगीत सिखाने का भी अवसर मिलता रहा। फ्लोरा फाउंटन के पास होनेवाले भातखंडे जी के शारदा संगीत मंडल की संगीत-कक्षाओं में प्रतिदिन संध्या समय वे अपनी

हाजिरी लगाते ही थे। संस्था की ओर से उन्हें साप्ताहिक सभाओं में अपना गायन प्रस्तुत करने के लिए निमंत्रित किया गया और उसमें वे सभी की प्रशंसा के पात्र बन गए। इसी सिलसिले में गुरुमहोदय पं. भातखंडेजी ने उन्हें कुछ कक्षाओं को पढ़ाने का भी काम सौंप दिया।

●

इस प्रकार अण्णासाहब की संगीत-साधना का अध्याय दो अति महान संगीत महारथियों के मार्गदर्शन में तथा बहुविध सांगीतिक अनुभवों से गुजरते हुए अत्यंत फलदायी रहा। १९१० से १९२६ तक की इस षोड़षवर्षीय प्रदीर्घ साधना की पूंजी अण्णासाहब के लिए जीवनपाथेय बन गई। उन्होंने अपने भावी जीवन में जो जो ऊंचे कार्य किए उनके पीछे यह अथक संगीत की साधना और साहित्य तथा भाषा की गहरी लगन और सबसे ऊपर गुरुद्वय का आशीर्वाद आदि सब घटक कारणीभूत रहे। पं. भातखंडेसाहब तो अपने शिष्य को और और ऊंचे शिखरों के दर्शन कराना चाहते थे।.... उसीकी कहानी अगले अध्याय में।

▶